कुरुक्षेत्र

जुलाई 1995

मूल्य : पांच रुपये

ग्रामीण विकास और पशु पालन

जवाहर रोजगार योजना के तहत उत्तर प्रदेश के एक गांव में चल रहा विकास कार्य

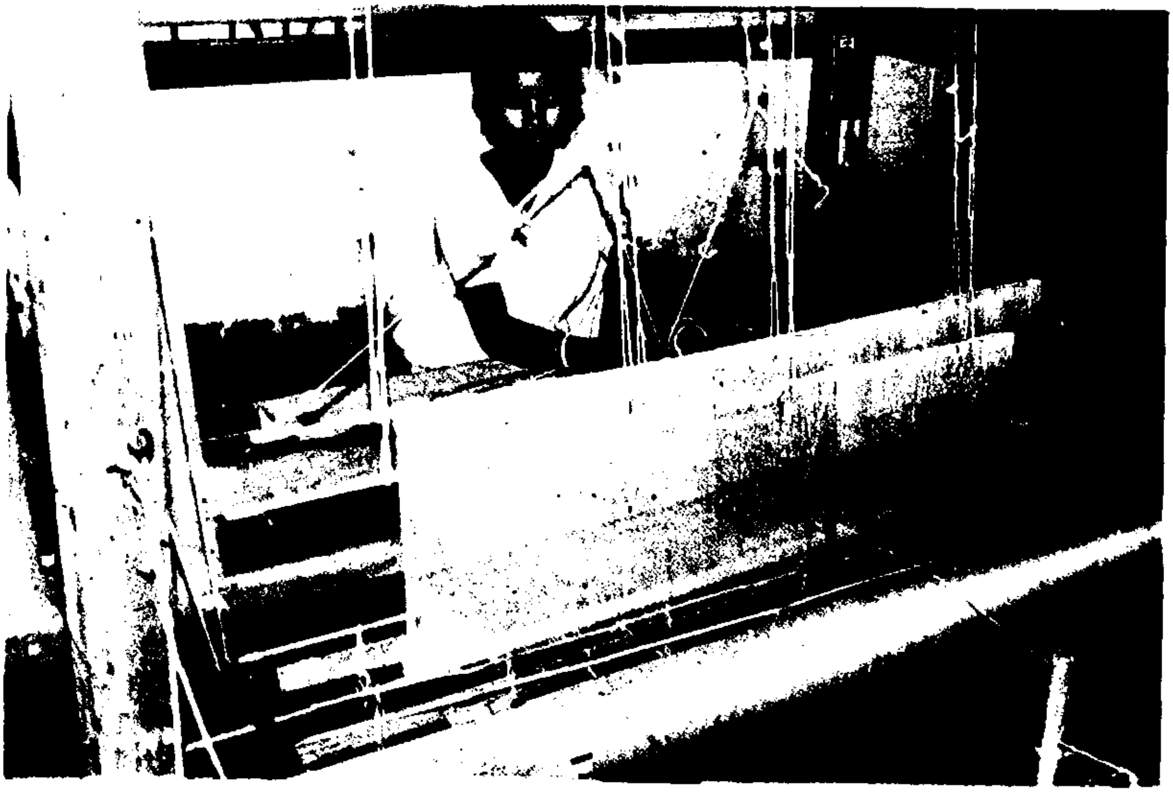

ग्रामीण महिला तथा बाल विकास योजना, डवाकरा के तहत चल रहे एक कार्यक्रम में कार्यरत एक ग्रामीण महिला

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय की प्रमुख मासिक पत्रिका 'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए। लघु कथाओं का भी स्वागत है। अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है। 'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने व अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 से कीजिए।

वर्ष 40 अंक 9 आषाण-श्रावण 1917, जुलाई 1995

कार्यकारी संपादक	:	बलदेव सिंह मदान
उप संपादक	:	ललिता जोशी
उप निदेशक (उत्पादन)	:	के. आर. कृष्णन
विज्ञापन प्रबंधक	:	बैजनाथ राजभर
सहायक व्यापार व्यवस्थापक	:	पी० एन० बुलकुंडे
आवरण सज्जा	:	आर. के. टंडन

एक प्रति : पांच रुपये **वार्षिक चंदा : 50 रुपये**

फोटो साभार : रमेश चंद्र, फोटो प्रभाग, ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय

इस अंक में

नरसिम्ह राव सरकार के चार वर्षों में ग्रामीण विकास	राम विहारी विश्वकर्मा	3
ग्रामीण विकास में पशुपालन का महत्व	विमल राय	5
ग्रामीण विकास और पशुपालन	डा. विमला उपाध्याय	7
श्वेत क्रांति के बदलते आयाम	ओ. पी. शर्मा	9
दुधारू पशुओं हेतु बैंक ऋण की व्यवस्था	इन्दुशेखर व्यास	11
ग्रामीण रोजगार : वर्तमान स्थिति तथा भविष्य के लिए रणनीतियां	प्रदीप भटनागर	13
मातृत्व : सबसे बड़ी शक्ति और सबसे बड़ी कमजोरी	आशारानी व्होरा	17
पशुपालन : बाड़मेर की अर्थ व्यवस्था की धुरी	पी. आर. त्रिवेदी	23
पंचायती राज और स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका	अक्षेम	25
गांवों में बिजली	सुभाष चन्द्र 'सत्य'	27
जादू (कहानी)	सुधीर ओखदे	29
ग्रामीण अर्थ व्यवस्था की धुरी : बैलगाड़ी	डा. प्रेमचन्द्र गोस्वामी	30
ग्राम्य विकास : समस्याएं और समाधान	लल्लन त्रिवेदी	32
महिलाओं की प्रगति की राह में रोड़े, चुनौतियां और प्रेरणाएं	राजेन्द्र प्रसाद खेकड़ा	34
जनसंख्या विस्फोट एवं जनसंख्या शिक्षा	सत्यपाल मलिक	36
बेल : आहार भी, औषध भी	डा. विजय कुमार उपाध्याय	38
चित्रकूट में वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत के बढ़ते कदम	डा. हिमांशु शेखर	39
जनजातीय क्षेत्रों में विकास योजनाओं का मूल्यांकन	डा. विजय कुमार उपाध्याय	41
कीटनाशक दवाओं का उपयोग - सावधानियां	डा. ए. के. अवस्थी	43

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित इस पत्रिका में शामिल लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें। दूरभाष : 384888

पाठकों के पत्र

'कुरुक्षेत्र' का अप्रैल 1995 अंक पढ़ा। पंचायती राज के बारे में विशेष जानकारी मिली। सरकार द्वारा चलाई जाने वाली स्वरोजगार योजनाओं तथा महिलाओं की साक्षरता के बारे में भी पत्रिका से काफी जानकारी मिली।

पंचायती राज में महिलाओं को विशेष स्थान दिया गया है। अंक में पंचायतों के अधिकार, उनको मिलनेवाली वित्तीय सहायता, पंचायतों में महिलाओं में भागीदारी आदि के बारे में भी मालूम हुआ।

राममेहर जोगड़ा, गांव बनभोरी,
जिला हिसार हरियाणा,
पिन 126011

'कुरुक्षेत्र' के मार्च अंक में प्रकाशित लेखों के जरिए आपने सामयिक विषयों को छुआ है। इस लिहाज से यह अंक बहुत ही महत्वपूर्ण व सशक्त लगा।

'राष्ट्रीय एकता में महिलाओं की भूमिका' (आशारानी व्होरा), 'महिला साक्षरता का विस्तार' (सुन्दरलाल कुकरेजा), 'ग्रामीण युवा स्वरोजगार कार्यक्रम' (पूनम शर्मा) जैसे लेख सामयिक व प्रभावी लगे। पर्यावरण से संबंधित उषा जोशी की कविता 'खुश है आज गांव का बरगद' बेहद अच्छी लगी।

नरेश कुमार ठाकुर,
मोगल बाजार,
मुंगेर-811201 (बिहार)

मुझे मार्च 1995 का 'कुरुक्षेत्र' हिन्दी पढ़ने का प्रथम अवसर प्राप्त हुआ। इस अंक में मुझे ग्रामीण विकास सम्बन्धी बहुत सी जानकारियां प्राप्त हुईं। अंक में धीरेन्द्र कुमार सिंह एवं डा. ए. पी. राव की रचना 'पोलीकल्चर पद्धति से मछली पालन' लेख बेहद पसंद आया।

आशा है आप ऐसी ही जानकारियां सदैव प्रस्तुत करते रहेंगे।

निर्मल कुमार शर्मा,
कुलदीप सिंह रोड,
''दुमका'' 814101
(बिहार)

'कुरुक्षेत्र' (हिन्दी) मार्च-95 के अंक ने मुझे बहुत प्रभावित किया। आशारानी व्होरा द्वारा लिखित 'राष्ट्रीय एकता में महिलाओं की भूमिका' लेख और 'जवाब अधूरे हैं' कहानी बहुत पसन्द आई। प्रकाशन विभाग के प्रकाशन 'योजना', 'कुरुक्षेत्र', 'आजकल' का मैं नियमित पाठक हूं। 'कुरुक्षेत्र' में ग्रामीण विकास पर जो भी सामग्री निकलती है वह बहुत ही ज्ञानवर्द्धक एवं विशेष जानकारी से ओत-प्रोत होती है।

संजय कुमार केशरी,
भूतनाथ आश्रम रोड,
पटना-20

लेखकों से

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक कहानी, कविता, संस्मरण, लघुकथा आदि भेजिये। रचनाएं दो प्रतियों में टाइप की हुई हों और उनके साथ मौलिकता का प्रमाण पत्र संलग्न हो अन्यथा उन्हें स्वीकार नहीं किया जाएगा। अस्वीकृत रचना लौटाने के लिए कृपया डाक टिकट लगा अपना पता लिखा लिफाफा लगाना न भूलें। सभी रचनाएं संपादक, 'कुरुक्षेत्र', 467, कृषि भवन, नई दिल्ली-110001 के पते पर भेजें।

—सम्पादक

नरसिम्हा राव सरकार के चार वर्षों में ग्रामीण विकास

राम बिहारी विश्वकर्मा

हमारे देश की बहुसंख्यक आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में रहती है और ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकतर लोग अब भी गरीबी के दलदल में फंसे हुए हैं। उन्हें गरीबी के चंगुल से मुक्त कराने के लिए यह आवश्यक है कि उनके लिए अधिक से अधिक ऐसे कार्यक्रम चलाये जाएं, जिनसे उनका सही ढंग से विकास हो सके। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने ग्रामीण विकास को देश की अर्थव्यवस्था के लिए प्रमुखता देने पर जोर दिया था। प्रधानमंत्री श्री नरसिम्ह राव के नेतृत्व में पिछले चार वर्षों से केंद्र में सत्तारूढ़ सरकार ने ग्रामीण विकास की ओर लगातार ध्यान दिया है। 1992-93 में ग्रामीण विकास संबंधी कार्यक्रमों के लिए 3100 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया, जबकि 1993-94 में इसे बढ़ाकर 5010 करोड़ रुपये कर दिया गया। 1994-95 में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिए 7010 करोड़ रुपये की राशि निर्धारित की गई थी और 1995-96 में इसे बढ़ाकर 7700 करोड़ रुपये कर दिया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वर्तनान सरकार ने पिछले चार वर्षों में ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के लिए निर्धारित राशि में लगातार वृद्धि की है। सरकार का प्रयास है कि ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी को पूरी तरह दूर कर दिया जाए।

ग्रामीण क्षेत्र के लोगों के विकास के लिए सबसे आवश्यक यह है कि लोगों को काम-धंधे और रोजगार उपलब्ध कराए जाएं, क्योंकि जब वे काम-धंधे में लगे होंगे तो निश्चित रूप से उनकी आमदनी बढ़ेगी और आमदनी बढ़ने के साथ-साथ उनके रहन-सहन का स्तर भी ऊंचा उठेगा। ग्रामीण क्षेत्रों में समन्वित विकास के उद्देश्य से जवाहर रोजगार योजना सबसे बड़े रोजगार कार्यक्रम के रूप में शुरू की गयी। हाल में देश के अत्यधिक पिछड़े हुए एक सौ बीस जिलों में गहन जवाहर रोजगार योजना शुरू की गई है। ग्रामीण क्षेत्रों में जिन लोगों को अल्प रोजगार मिला है वे और जो रोजगार की तलाश में गांवों को छोड़कर शहरों की ओर चले जाते हैं, उनकी इस तरह की प्रवृत्ति को रोकने के उद्देश्य से सरकार ने जवाहर रोजगार योजना और गहन जवाहर रोजगार योजना के तहत 10.370 लाख श्रम दिवस के बराबर रोजगार पैदा करने का कार्यक्रम शुरू किया है। इस कार्यक्रम पर केंद्र सरकार 3,855 करोड़ रुपये की धनराशि खर्च कर रही है। ग्रामीण क्षेत्रों में फसलों की कटाई के बाद कुछ समय ऐसा बच जाता है जबकि लोगों के पास पर्याप्त काम धंधा नहीं होता और वे खाली समय बिताते हैं। ऐसे समय के लिए यानी खाली समय में लोगों को रोजगार उपलब्ध कराने के उद्देश्य से सरकार ने सुनिश्चित रोजगार योजना शुरू की जिसके तहत कम से कम 100 दिनों तक लोगों को रोजगार उपलब्ध कराया जाए। इस तरह का कार्यक्रम अक्तूबर 1993 से शुरू किया गया। सरकार ने सबसे गरीब और अत्यधिक गरीब लोगों की पहचान करने और उन्हें रोजगार की सुरक्षा कराने के उद्देश्य से उनका पंजीकरण शुरू कर दिया है। अब तक एक करोड़ से अधिक लोगों का पंजीकरण किया जा चुका है। आशा है कि चालू वर्ष के दौरान 20 करोड़ श्रम दिवस के बराबर रोजगार के अवसर उपलब्ध करा दिये जायेंगे। इस कार्यक्रम के लिए केंद्र सरकार ने 1200 करोड़ रुपये की धनराशि आबंटित करने का निश्चय किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम भी चलाया जा रहा है। इसके लिए चालू वर्ष के दौरान केंद्र सरकार की ओर से 2000 करोड़ रुपये का ऋण और 600 करोड़ रुपये की सब्सिडी राशि उपलब्ध कराई जा रही है।

गांवों में गरीबी दूर करने के रास्ते में सबसे बड़ी रुकावट जनसंख्या वृद्धि है। विकास के तमाम लाभ जनसंख्या वृद्धि के कारण प्रभावी नहीं हो पाते हैं। इसलिए राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर जनसंख्या नियंत्रण के लिए लगातार प्रयास किये जा रहे हैं। गांवों के उत्थान में रोजगार के महत्व को ध्यान में रखते हुए केंद्र सरकार ने ग्रामीण विकास के लिए एक नया मंत्रालय बनाया है। इस मंत्रालय ने गांवों के शिक्षित और अशिक्षित लोगों, कुशल और अकुशल कारीगरों, भूमिहीन किसानों और महिलाओं के लिए काम उपलब्ध कराने की अनेक योजनाएं चलाई हैं। पिछले चार वर्षों में इन योजनाओं को और व्यापक बनाने के लिए प्रयास किये गये हैं। इनके फलस्वरूप पिछले दो वर्षों में हर साल औसतन साठ लाख लोगों को अतिरिक्त रोजगार उपलब्ध हुआ। 1995-96 के दौरान एक अरब 26 करोड़ श्रम दिवस के बराबर रोजगार पैदा होने का अनुमान है। वर्तमान सरकार ने लक्ष्य रखा है कि इस

शताब्दी के अंत तक सभी को रोजगार उपलब्ध हो जाए। हालांकि वर्तमान स्थिति को देखते हुए इस लक्ष्य को प्राप्त कर पाना दुष्कर लगता है तथापि जो कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं उन पर यदि सही ढंग से कार्यान्वयन जारी रहा तो ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या काफी हद तक हल की जा सकेगी और कुल मिलाकर, ग्रामीण क्षेत्रों का पर्याप्त विकास सम्भव होगा। गरीबी उन्मूलन के जो कार्यक्रम चलाये जा रहे हैं, उन पर सूखाग्रस्त इलाकों, रेगिस्तानी क्षेत्रों और जनजातीय तथा पहाड़ी इलाकों में विशेष जोर दिया जा रहा है। कुछ इलाकों में कमजोर वर्ग के लोगों को भोजन और वस्त्र तो उपलब्ध हो जाते हैं लेकिन उनके सामने आवास की समस्या मुंह बाये खड़ी रहती है। ऐसे लोगों की रिहायशी मकान की बुनियादी जरूरत को पूरा करने के उद्देश्य से इंदिरा आवास योजना पर विशेष बल दिया जा रहा है। 1993-94 में इंदिरा आवास योजना के तहत दी जाने वाली रकम को दस प्रतिशत और बढ़ा दिया गया है। 1994-95 के दौरान इंदिरा आवास योजना के अंतर्गत करीब चार लाख मकानों के निर्माण का लक्ष्य रखा गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में जब तक महिलाओं का समुचित उत्थान नहीं होता तब तक सभी प्रकार की योजनाएं मानो निष्फल रहती हैं क्योंकि महिलाएं ही परिवार के विकास की धुरी हैं। इसलिए ग्रामीण महिला तथा बाल विकास योजना को देश के सभी जिलों में प्राथमिकता के आधार पर लागू किया जा रहा है। महिला समृद्धि योजना इस कार्यक्रम का एक अभिन्न अंग है। इसके माध्यम से महिलाओं को आत्म निर्भर बनाने का प्रयास किया जा रहा है। जवाहर रोजगार योजना जब अप्रैल, 1989 में चालू की गई थी तो उसमें दो कार्यक्रम शुरू किये गये थे– एक का नाम था राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और दूसरे का नाम था–ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम। इन दोनों कार्यक्रमों का उद्देश्य गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का समुचित विकास करके उन्हें गरीबी की रेखा से ऊपर लाना था।

गांवों के दस्तकारों और शिल्पकारों की आर्थिक स्थिति प्रायः दयनीय पाई जाती है। 1992 से इन कारीगरों को प्रशिक्षण और औजार के किट देने के लिए ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण योजना, ट्राइसेम चलायी गयी। अब तक दो लाख से अधिक कारीगरों को उन्नत किस्म के औजारों के किट दिये जा चुके हैं। इन कारीगरों को समय-समय पर प्रशिक्षण भी दिया जाता है, ताकि वे कुशल कारीगर बनकर अपने तथा अपने परिवार की आर्थिक स्थिति को बेहतर बना सकें।

ग्रामीण क्षेत्रों में फसलों की सिंचाई के लिए पानी की सुविधा उपलब्ध कराने के साथ-साथ पेयजल की सुविधा उपलब्ध कराना एक प्रमुख आवश्यकता है क्योंकि स्वच्छ पेयजल पर ग्रामीण इलाकों के लोगों का स्वास्थ्य भी निर्भर है। हाल में सरकार ने ऐसे गांवों की सूची तैयार कराई है जहां पर जल के साधन बिल्कुल नहीं हैं। ऐसे गांवों को प्राथमिकता के आधार पर पेयजल उपलब्ध कराया जा रहा है। सरकार का लक्ष्य है कि 1997 तक सभी जलविहीन बस्तियों में स्वच्छ पेयजल उपलब्ध करा दिया जाए। सूखे वाले क्षेत्रों में इस कार्यक्रम को बहुत प्राथमिकता दी जा रही है। इसी कार्यक्रम से जुड़ा एक कार्यक्रम है सूखाग्रस्त क्षेत्रों का विकास कार्यक्रम। देश के 945 खंडों में सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम और 234 खंडों में मरुभूमि विकास कार्यक्रम चालू किया गया है।

ग्रामीण क्षेत्रों में विकास कार्यक्रमों के समुचित लाभ के लिए यह आवश्यक है कि लोगों का जीवन शांत और परेशानियों से मुक्त रहे। इस उद्देश्य से पंचायती राज व्यवस्था को लागू करने के लिए सरकार ने लगातार प्रयास किये हैं। 73वें संविधान संशोधन के अनुसार पंचायती राज की नई व्यवस्था पर अमल करने का निश्चय किया गया है। पंचायतों के अधिकारों के बारे में नये-नये प्रावधान किये गये हैं ताकि लोग अपनी समस्याओं को पंचायतों के माध्यम से हल कर सकें और देहाती इलाकों में मुकदमेबाजी की घटनायें कम हों। भूमि सुधारों को लागू करने पर भी हाल के वर्षों में बहुत जोर दिया गया है। कृषि जोतों की अधिकतम सीमा लागू की गई है। इसके फलस्वरूप प्राप्त जमीन ऐसे लोगों में वितरित की गई जिनके पास अभी तक बिल्कुल जमीन नहीं थी। लगभग 49 लाख लाभार्थियों को 51 लाख एकड़ भूमि दी गई है।

भूमि के रिकार्डों को आधुनिक बनाने का कार्यक्रम लागू कर दिया गया है। तेजी से कम्प्यूटरीकरण किया जा रहा है और भू-राजस्व से संबद्ध प्रशासन का पुनर्गठन किया जा रहा हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में कुटीर उद्योगों को बढ़ावा देने के प्रयास किये जा रहे हैं। हस्तशिल्प उद्योग में इस समय चालीस लाख कारीगरों को काम मिला हुआ है। खादी और ग्रामोद्योग आयोग इस दिशा में उल्लेखनीय भूमिका निभा रहा है। इस वर्ष के बजट में खादी ग्रामोद्योग आयोग के लिए दस अरब रुपये की नयी योजना शुरू करने का प्रावधान है।

(शेष पृष्ठ 10 पर)

ग्रामीण विकास में पशुपालन का महत्व

✍ बिमल राय

भारत की आत्मा अगर गांवों में बसती है तो किसान की आत्मा उसके पशुधन में। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में पशुपालन हमारी अर्थ-व्यवस्था की रीढ़ है। हमारे यहां प्राचीन काल से ही पशुधन को महत्व दिया जाता रहा है। कहा भी गया है "तिल न धान्य पशुवो न गावा।" इनमें भी गाय को विशेष महत्व देते हुए उसे माता कहा गया है। भारतीय आचार-विचार, सभ्यता और संस्कृति सभी में गोवंश को प्रमुख स्थान दिया गया है। अपने राष्ट्रीय महत्व के कारण ही गोवंश रक्षा स्वतंत्रता आंदोलन का मुद्दा बनी। महात्मा गांधी ने तो उसे आजादी से भी अधिक महत्व दिया।

ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का मूलाधार

पशुधन हमारी आर्थिक प्रगति का स्रोत है। पशुपालन से परोक्षतः जहां सम्पूर्ण समाज लाभान्वित होता है वहां प्रत्यक्षतः तीन करोड़ लोगों की रोजी-रोटी इससे जुड़ी है। हमारे पशुधन का बाजार मूल्य वर्तमान में 46 हजार करोड़ रुपये है, जो कि पहले से काफी कम हो गया है। हमारे जीवनाधार पशुओं से हमें 1900 करोड़ रुपये का दूध और 900 करोड़ रुपये की खाद (गोबर-मूत्र के रूप में) प्राप्त होती है। इसके अलावा मृत पशुओं की खाल, हड्डियों आदि से तीन हजार करोड़ रुपये की आय होती है। सरकार द्वारा प्रतिवर्ष कृषि क्षेत्र में सिंचाई, परिवहन, खाद-बीज, कीटनाशकों पर 15 हजार करोड़ रुपये का अनुदान दिया जाता है।

विश्व के दुधारू पशुओं का कुल 15 प्रतिशत भारत में है तथा कुल राष्ट्रीय आय का 15 प्रतिशत इन्हीं से प्राप्त होता है। यह बहुत चिन्ता की बात है कि कृषि का एक महत्वपूर्ण हिस्सा होते हुए भी पशुपालन को एक दूसरे दर्जे का व्यवसाय समझा जाता है। पढ़े-लिखे लोग पशुपालन को हेय व्यवसाय ही समझते हैं। विश्व के हर पांच पशुओं में से एक भारत में है तथा देश में पशुओं की कुल संख्या 37.66 करोड़ है। इस संख्या के बावजूद पूरे विश्व में दुग्ध उत्पादन में भारत की भागीदारी मात्र आठ प्रतिशत है। प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता के मामले में भी हम लोग बहुत पीछे हैं। स्विटजरलैण्ड में जहां प्रति व्यक्ति 741 ग्राम और न्यूजीलैण्ड में 634 ग्राम दूध प्राप्त होता है वहीं भारत में प्रत्येक व्यक्ति को प्रतिदिन 185 ग्राम ही दूध प्राप्त होता है जबकि विश्व स्वास्थ्य संगठन के मुताबिक प्रत्येक व्यक्ति को तीन सौ ग्राम दूध मिलना चाहिए।

आपरेशन फ्लड कार्यक्रम

खाद्य और कृषि संगठन (खाद्य दृष्टिकोण) की नवीनतम रिपोर्ट के अनुसार भारत विकासशील देशों में दूध और दूध से बनी वस्तुओं के उत्पादन में अग्रणी है। उत्तरी क्षेत्र के चार राज्य उत्तर प्रदेश, राजस्थान, हरियाणा और पंजाब का भारत के कुल दूध उत्पादन में अग्रणी स्थान है। देश के कुल दुग्ध उत्पादन का 47 प्रतिशत इन चार राज्यों से प्राप्त होता है। देश अब बड़े पैमाने पर दुग्ध उत्पादक के रूप में अमरीका और रूस के बाद तीसरे स्थान पर है। श्वेत क्रांति को प्रारम्भ करने के लिए आपरेशन फ्लड बहुत प्रेरक रहा। सहकारी डेरियों को ग्रामीण क्षेत्रों में शुरू करने और फिर उन्हें शहरी बाजारों की आपूर्ति करने के उद्देश्य को मद्देनजर रखते हुए यह कार्यक्रम 1970 में शुरू किया और विश्व का सबसे बड़ा डेयरी कार्यक्रम बना। रोजगार के अवसर उत्पन्न करने के अतिरिक्त इससे कृषि भूमि पर दबाव कम हुआ विशेषतः सहकारी क्षेत्रों को डेयरी उद्योग में भारी सफलता प्राप्त हुई है।

पशुधन : ऊर्जा का मुख्य स्रोत

भारत के अधिकतर किसान लघु और सीमान्त श्रेणी में आते हैं। किसान खेती के लिये बैल और भैंसे की मदद लेते हैं। एक अनुमान के अनुसार हमारे देश में 7.15 करोड़ बैलों और 75 लाख भैंसों से 47000 मेगावाट की ऊर्जा के बराबर काम होता है। आज भी पशुओं द्वारा की गयी ढुलाई रेल द्वारा की गई ढुलाई से ज्यादा है। यदि यह मान लिया जाए कि एक जोड़ी बैल या भैंसा एक वर्ष में 100 दिन कार्य करते हैं तो कार्यशील 4 करोड़ जोड़ी पशुओं से 6000 करोड़ रुपये की वार्षिक आय होती है।

कृषि कार्य में गोबर का बड़ा महत्व है। फसलों की उपज बढ़ाने के लिये गोबर उर्वरक का काम करता है। गोबर के कारण मिट्टी की जल सोखने की क्षमता बढ़ जाती है तथा फसलों पर सूखे का असर जल्दी नहीं पड़ता है। सभी प्रकार के पशुओं से लगभग 20 टन गोबर प्रतिदिन प्राप्त होता है। गोबर का खाद के रूप में प्रयोग करने से प्रतिवर्ष 26 लाख टन यूरिया की बचत हो रही है।

बायोगैस के रूप में ऊर्जा के वैकल्पिक स्रोतों में, गोबर का महत्व अत्यधिक है। यदि सम्पूर्ण प्राप्त गोबर का बायोगैस में प्रयोग किया जाए तो 6.1124 करोड़ लीटर बायोगैस प्रतिदिन उत्पन्न हो सकती है। एक अनुमान के अनुसार 1400 टन गोबर से 47 टन कोयले के बराबर ऊर्जा प्राप्त होती है। गांवों में गोबर को सुखा कर भी ईंधन के रूप में उसका उपयोग किया जाता है, लेकिन इसे गोबर जैसे उर्वरक को नष्ट करना ही कहा जायेगा। किसानों को चाहिए कि वे गोबर का उपयोग उपले व कंडे बनाने में न करें। वे इसका उपयोग खाद के रूप में ही करें।

पशुधन विकास में सरकार के प्रयास

भारत में पशुओं की मृत्यु दर 3.1 प्रतिशत है जो ज्यादा ही कही जाएगी। एक अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष 237 लाख पशु मरते हैं और मरे हुए पशुओं में से प्रतिपशु 11.3 किलोग्राम चमड़ा, 18.7 किलोग्राम हड्डी, 2.3 किलोग्राम चर्बी, 5.1 किलोग्राम सींग, खुर और आंतें इत्यादि प्राप्त होते हैं। पशुओं से प्राप्त होने वाली सबसे महत्वपूर्ण चीज चमड़ा है। मृत पशुओं की चर्बी से मोमबत्ती, ग्रीस, साबुन आदि उपयोगी वस्तुएं बनायी जाती हैं। नेवले, गिलहरी और सूअर के बाल से ब्रुश, मुर्गी के पंखों से बैडमिन्टन की शटल इत्यादि बनाई जाती हैं। कई दवाएं भी पशुओं के अंग-प्रत्यंगों से बनाई जाती हैं। सरकार पशुधन के विकास के लिए निरन्तर प्रयास कर रही है। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत पशुधन की प्रगति पर काफी ध्यान दिया गया जिसके अन्तर्गत आई. सी. डी. पी. (इन्टीग्रेटेड कैटिल डेवलपमेन्ट प्रोग्राम) सघन भेड़ विकास परियोजना, सघन मुर्गीपालन विकास परियोजना इत्यादि चलाई गई।

पंचवर्षीय योजनाओं में कृत्रिम गर्भाधान तथा अच्छे सांडों द्वारा प्रजनन से निम्न श्रेणी की गाय, भैंसों का नस्ल सुधार, गोशालाओं का निर्माण आदि कार्यक्रम क्रियान्वित किए गए वहीं पोल्ट्रीफार्म के विकास, गायों की संकर जातियों का विकास और पशु उपचार पर विशेष ध्यान दिया गया। आज कृत्रिम गर्भाधान केन्द्र और हिमीकृत वीर्य बैंकों की स्थापना पर विशेष बल दिया जा रहा है।

आज देश में रोजगार के लिये गांवों से शहरों की ओर जाने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। यदि पशुधन पर समुचित ध्यान दिया जाए तो यह पलायन एक हद तक रोका जा सकता है। हमें इस प्रवृत्ति को बदलना होगा कि पशुपालन अनपढ़ लोगों की आजीविका का साधन है। संचार माध्यमों के जरिये इस प्रवृत्ति को बदलने का प्रयास किया जाना चाहिए। पशु टीकाकरण को राष्ट्रीय मिशन का रूप देकर पशुओं की मृत्यु दर कम की जा सकती है। किसानों को अंधविश्वास की जकड़न से मुक्त करने के लिए विशेष प्रयास होने चाहिए क्योंकि अधिकतर किसान अभी भी पशु-रोगों का इलाज झाड़ फूंक से ही करवाते हैं। सरकार को पशु चिकित्सालयों की संख्या बढ़ाकर इस दिशा में अपने प्रयास तेज करना चाहिए।

310, आदर्श नगर,
पो. बड़ाबहेरा, जिला–हुगली (पं बंगाल),
पिन - 712246।

पाठकों के विचार

इस पत्रिका में 'पाठकों के विचार' स्तंभ में पाठकगण ग्रामीण विकास के विभिन्न पहलुओं पर अथवा इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों पर अपने विचार भेज सकते हैं। ये विचार दो सौ शब्दों से अधिक के न हों और सम्पादक, कुरुक्षेत्र, कमरा न० 467, कृषि भवन, नई दिल्ली - 110001 के पते पर भेजे जाएं।

इसके लिए कोई पारिश्रमिक देय नहीं होगा परंतु उन पाठकों को पत्रिका की एक प्रति भेजी जाएगी जिनके विचार इस स्तंभ में प्रकाशित होंगे।

—सम्पादक

ग्रामीण विकास और पशुपालन

डा. विमला उपाध्याय

मनुष्य का तीन से नाता अति घनिष्ठ है—मिट्टी (धरती, जमीन), प्रकृति (पेड़-पौधे) और जीव-जन्तु (पशु)। ये उसके जीवन के अभिन्न अंग हैं। इसलिए वह उनकी उचित देखभाल और उसके संतुलित विकास के लिए प्रयत्नशील रहता है। कृषि प्रधान देश होने के कारण भारत का आधार धरती है। धरती पर ही पेड़-पौधे और फसलें उगती हैं। यहीं पशु भी जन्म लेते, विचरते और बड़े होते हैं। कृषि के विकास में पशुओं की अहम भूमिका की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

कृषि का एक महत्वपूर्ण अंग है पशु पालन। यह लघु और सीमांत किसानों, ग्रामीण महिलाओं और भूमिहीन कृषि श्रमिकों को रोजगार के पर्याप्त व सुनिश्चित अवसर देकर ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को ठोस आधार प्रदान करता है। यह दूध, गोबर, अंडे, ऊन, चमड़ा, खाल और हड्डियां देकर ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को समृद्ध करता है। एक ओर बैल, ऊंट, घोड़े, भैंसे हल जोतते हैं, सिंचाई के लिए रहट और मोट खींचते हैं तो दूसरी ओर ग्रामीण पशु कच्ची धूल-भरी सड़कों पर यातायात के एकमात्र वाहक हैं। जनसंख्या विस्फोट के कारण आबादी जिस गति से बढ़ रही है, उस गति से न आर्थिक संसाधनों का दोहन हो पा रहा है, न सरकार की ओर से रोजगार जुटाने की व्यवस्था हो रही है। अशिक्षा, जड़ता, पिछड़ेपन और रूढ़ियों ने ग्रामीण विकास को जकड़कर पकड़ लिया है। फलतः अशिक्षित ही नहीं शिक्षित ग्रामीण युवक भी शहर की ओर भाग रहे हैं। अपनी जमीन से कटते जा रहे हैं। उधर महानगरों पर दबाव बढ़ रहा है। प्रदूषण बढ़ रहा है और गांवों से भागे नवयुवक वहां भी आश्रय नहीं पा रहे हैं। इस स्थिति में गांधी जी के औद्योगिक विकेन्द्रीकरण और लघु व कुटीर उद्योगों के प्रोत्साहन की ओर ध्यान जाता है। दो मुहिम पर एक साथ लड़ाई की जरूरत है--बढ़ती आबादी की रोकथाम और स्थानीय संसाधनों और क्षेत्रीय आधार पर रोजगार की समस्या का समाधान। श्रम को प्रतिष्ठा मिले, अपनी मिट्टी से जुड़ा जाए, स्थानीय संसाधनों के उपयोग का मार्ग प्रशस्त हो तो स्वावलंबन बहुत हद तक आ सकता है। जिसका प्रमुख विकल्प है पशुपालन।

पशुपालन के साथ कई कठिनाइयां हैं। कई बाधाएं हैं। गत दो दशकों के सर्वेक्षण साक्षी हैं कि कृषि तथा पशुपालन के प्रति लोगों में उदासीनता पनपी है, जैसे-जैसे गांवों पर महानगरीय सभ्यता हावी होती गई, खेत कटते गए, कंकरीट के जंगल बनते गए, उद्योग धंधों का जाल फैला तो प्रदूषण बढ़ता गया। चरागाह कटे तो पशुओं पर संकट आया। उनका योजनाबद्ध पालन-पोषण नहीं हुआ, तो वह घाटे का व्यापार लगने लगा। उससे मन उचटने लगा। उदासी बढ़ने लगी। इसलिए यह जरूरी हो गया कि पशु पालन की समस्या पर गंभीरता से विचार किया जाए। उनके सर्वेक्षण और मूल्यांकन के साथ सरकारी योजनाओं पर एक नजर डाली जाए।

पशुओं का चयन और रख रखाव

आज भी ग्रामीण यह हिसाब नहीं लगा पाते हैं कि एक पशु के पालन में कितना खर्च है और कितनी आमदनी है। दरवाजे पर एक जोड़ा है, तो सालों भर उसे चारा दाना दिया जा रहा है। एक फसली जमीन होने के कारण भादों महीने में एक बार उसे दस-पांच बीघे खेत जोतना है। फिर साल भर खाना है। थोड़ा-सा गोबर देता है। जिस किसान का पुआल या भूसा चूक गया, वह बैलों को बेच देता है। प्रतिस्थापन के सिद्धांत का पालन यहां भी होना चाहिए जिससे ध्यान रहे कि एक इकाई पशु से अधिक उपयोगिता मिल सके। एक जोड़ा बैल हों तो अच्छी नस्ल के, कद्दावार, हृष्ट-पुष्ट हों जो (क) खेत जोत पाएं साल में तीन बार। (ख) बैल गाड़ी रखी जाए, जिससे गोबर, खाद बिचड़ा खेत पहुंचाया जाए और स्थानीय बाजार तक कृषिजन्य उत्पादन पहुंचाया जाए। (ग) उसे कोल्हू चलाने (तेल पेरने, गन्ने का रस निकालने) और मोट, रहट खींचने के काम में लाया जाए। बैलों का ऐसा उपयोग हो तो उसके रख रखाव पर खर्च भारी प्रतीत नहीं होगा। इसे आर्थिक उत्पादन की दृष्टि से देखना होगा। भैंस, गाय, सूअर, मुर्गे, बत्तख, गधे, बकरी, ऊंट, घोड़ा आदि के बारे में सदा उपयोगिता का ध्यान रखा जाए। ऐसा नहीं कि गाय गोमाता है। सूखी है। बांझ है। दूध नहीं देती है फिर भी उसका बोझ ऋण लेकर ढो रहे हैं। पहला प्रयास यह हो कि दूध देने वाली गाय ही पाली जाए। दाने चारे की पर्याप्त व्यवस्था हो और दूध उत्पादन से सीधे लाभ हो। गाय, रोगग्रस्त हो जाए तो मवेशी डाक्टर से उसकी जांच कराई जाए। उचित चिकित्सा सुविधा दी जाए। फिर भी स्वस्थ न हो, दूध न दे तो गोशाला में दे देनी चाहिए। अन्य पशुओं के चुनाव में भी इन बातों का ध्यान रहे।

कई बार खुरहा, गलहा, घेघा आदि महामारी फैल जाती है

और देखते ही देखते गांव के गांव पशुओं से विहीन हो जाते हैं। ऐसी हालत में दो उपाय कारगर हैं :

(क) पशु को खरीदने के समय डाक्टर से जांच करवा कर लेनी चाहिए और आवश्यक टीका आदि लगवा लेना चाहिए।

(ख) पशु का बीमा करवाना चाहिए। यदि महामारी फैल जाए तो युद्ध-स्तर पर टीका आदि लगाने की व्यवस्था होनी चाहिए। पशु के चरने पर निगाह रखी जाए। उसका विष्ठा खाना, छपा हुआ कागज़ चबाना और जहरीली घास खाना कभी-कभी तत्काल मृत्यु और कभी-कभी धीमे विष का कारण बनता है।

चारे का भंडारण

चारा दो प्रकार का होता है—एक हरा, दूसरा सूखा। हरे चारे की व्यवस्था हरी फसल, घास, सब्जी आदि के डंठल, पत्ते से होती है। सूखे चारे की व्यवस्था इस प्रकार हो सकती है :

(क) मकई खेत में लगा हो तो बाल (भुट्टा) तोड़कर उसका उपयोग हरे चारे के लिए हो सकता है। जो बच जाए, उसे छाया में सुखाकर सूखा चारा बनाया जा सकता है। ध्यान रहे यह पूरा सूख जाए। थोड़ी सी नमी रह गई तो इसमें लाल चींटी लगने का डर है। उजली चींटी भी घर बना सकती है। इसी प्रकार उड़द, बाजरे, धान, चना, मटर, तीसी का उपयोग हरे और सूखे चारे के रूप में हो सकता है। मुख्य काम है इसका भंडारण। भंडार गृह हवादार, सूखा और वर्षा से पूरी तरह सुरक्षित हो। खुले आसमान में इसका ढेर लगाना जरूरी हो जाए तो उसे ऐसे व्यवस्थित किया जाए कि ऊपर से पानी न पड़े और न ही नीचे से पानी घुस सके।

(ख) चारे और पशुओं के स्वास्थ्य के लिए गांव में कुछ गोचर भूमि जरूर छोड़ी जाए। सरकारी जमीन भी गोचर के लिए आवंटित करायी जा सकती है। इसमें एक तरफ स्थायी घास लगा दी जाए, दूसरी तरफ परती छोड़ दी जाए। मौसम के अनुसार अपने आप ही घास उगेगी। पशु चरेंगे।

उन्नत नस्ल वाले पशु

उन्नत नस्ल के पशु हों, इसके लिए नस्ल सुधार, कृत्रिम गर्भाधान, क्रास-ब्रीडिंग आदि की व्यवस्था हो। स्थानीय पशु चिकित्सक से निरंतर सम्पर्क बनाए रखा जाए। समय-समय पर पशु-प्रदर्शनी, पशु-मेला आयोजित हो। वहां पशु चिकित्सकों, ग्राम सेवकों और स्वयंसेवी संस्थाओं के सहयोग से हर पशु की डाक्टरी जांच हो। उचित चिकित्सा, हिदायत, जानकारियां दी जाएं। तीन-चार बैठकों में ग्रामीणों को पशु चिकित्सा के हर संभावित पहलू पर जानकारी दी जाए। श्वेत क्रान्ति की दिशा में पहल करने वाले पशु (गाय, भैंस, बकरी, भेड़) को प्राथमिकता मिलनी चाहिए। टीका लगाना, सुई देना, घाव की मरहम पट्टी करना आदि का प्रशिक्षण ग्राम सेवकों, प्रबुद्ध नवयुवकों और पशुपालकों को मिलना चाहिए। पशु-पालन के प्रति पूरी जागरूकता विकसित करने की जरूरत है।

नस्ल सुधार कार्यक्रम के अंतर्गत अच्छे नस्ल के सांड तैयार करने हेतु एक केन्द्रीय ग्राम योजना प्रारंभ की गई है, जिसके तहत वर्तमान समय में देश में 775 केंद्रीय ग्रामीण खंड कार्यरत हैं। अभी देश में 500 क्षेत्रीय तथा 1000 उपकेंद्र कृत्रिम गर्भाधान की दिशा में तेजी से कार्य कर रहे हैं। इनका मुख्य उद्देश्य है—पशुओं के नस्ल में सुधार, जिससे अधिक से अधिक दूध की प्राप्ति की जा सके।

पशुओं को रोगों से बचाने के लिए देशभर में 11,200 से अधिक पशु चिकित्सालय हैं। पशु-संख्या की वृद्धि के अनुपात में दवा के उत्पादन में भी वृद्धि हुई है।

चारे के स्थायी इंतजाम के लिए चारा केंद्र और चारा बैंकों की स्थापना हुई है, जो अपने स्तर पर चारे की उपलब्धि, भंडारण और वितरण के प्रति जागरूक हैं। बंबई की एक बीमा कंपनी दूध देने वाले और भारवाहक पशुओं का बीमा कर रही है। बैंक भी इस मद में ऋण देते समय पशु के स्वास्थ्य और बीमा के प्रति आश्वस्त होकर ही ऋण देते हैं। भारतीय डेयरी निगम 49 हजार डेयरी सहकारी समितियों का गठन कर चुका है। इससे 1994 तक 54 लाख 72 हजार किसान परिवार लाभान्वित हो चुके हैं। इसके अंतर्गत 168 से अधिक दुग्ध उत्पादन केंद्र हैं जिनसे 85 लाख लीटर दूध प्रतिदिन खरीदा जाता है।

सरकार की योजनाएं और उनकी उपलब्धियां उत्साहजनक हैं। किसानों, नवयुवकों का यथोचित सहयोग मिले, योजना के क्रियान्वयन में उनका सक्रिय योगदान हो तो पशुपालन से आशातीत विकास हो सकता है। इसी से ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ बनाया जा सकता है और गांधी जी के स्वप्नों का भारत स्वावलंबी बन सकता है।

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
अर्थशास्त्र विभाग, एस. एस. एल. एन. टी. स्नातकोत्तर
महिला महाविद्यालय, धनबाद - 826001

श्वेत क्रांति के बदलते आयाम

ओ. पी. शर्मा

भारत की तीन चौथाई आबादी की आजीविका कृषि पर निर्भर है। नियोजन काल के गत दशकों में कृषि विकास की ओर ध्यान केन्द्रित किए जाने के कारण खाद्यान्न के क्षेत्र में आत्मनिर्भरता प्राप्त हुई, किन्तु कृषक की माली हालत में अपेक्षित सुधार नहीं हो सका है। कृषि जोतों का छोटा आकार और ग्रामीण लोगों में व्याप्त निर्धनता भारतीय कृषि की प्रमुख समस्याएं हैं। कृषि को उद्योग का दर्जा प्राप्त नहीं हो पाने के कारण इसे उद्योगों की भांति प्रोत्साहन और रियायतें नहीं मिल पातीं। हाल ही के दिनों में इस ओर प्रयास किये जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में किसान के पास कृषि कार्य के अतिरिक्त जीवन यापन का जो आधार शेष बचता है वह पशु-पालन है। पशु भारतीय किसान की रीढ़ है। पशुओं का प्रयोग केवल कृषि कार्यों में ही नहीं होता अपितु इनसे दूध भी प्राप्त होता है जिससे किसान को कुछ अतिरिक्त आय प्राप्त होती है और उसकी आर्थिक दशा में सुधार होता है।

हमारे देश में दूध की बढ़ती मांग को पूरा करने के लिए आपरेशन फ्लड शुरू किया गया। यह अभियान पिछले दो दशकों से जन सेवा में प्रयासरत है। आपरेशन फ्लड दो चरण पूरे कर चुका है। वर्ष 1970-80 के पहले चरण के बजट के लिए 116 करोड़ रुपये का प्रावधान था और उन दस सालों में न केवल चार महानगरों में दूध का संकट दूर हो गया है बल्कि राष्ट्रीय साधनों को लगभग एक अरब रुपये का लाभ भी प्राप्त हुआ। दूध पाउडर का आयात जो छठे दशक में 65,000 टन था, वह पूरी तरह समाप्त हो गया।

आपरेशन फ्लड के दूसरे चरण (1980-85) में 153 शहरों और कस्बों को सम्मिलित किया गया और 139 दूध शेडों का विकास किया, जिससे एक करोड़ उत्पादक परिवारों को लाभ हुआ। इस चरण में कुल 485.5 करोड़ रुपये का बजट रखा गया जिससे 33 करोड़ रुपये के राष्ट्रीय साधन बढ़े।

आपरेशन फ्लड के तृतीय चरण की समयावधि (1986-94) निर्धारित की गई। इस चरण का मुख्य लक्ष्य दूध का उत्पादन 80 लाख लीटर प्रतिदिन से बढ़ाकर 150 लाख लीटर प्रतिदिन करना है।

कृषि क्षेत्र में हरित क्रांति की सफलता से प्रभावित होकर भारत सरकार दूध के क्षेत्र में भी श्वेत क्रांति लाने के लिए सतत् प्रयत्नशील है। राष्ट्रीय डेयरी विकास बोर्ड (एन. डी. डी. बी.) तथा आपरेशन फ्लड के सार्थक प्रयासों की सुखद परिणति है कि देश में प्रति व्यक्ति दूध की उपलब्धता में वृद्धि के साथ डेयरी उद्योग ने प्रगति के नये आयाम छुए हैं। श्वेत क्रांति लाने के उद्देश्य से सरकार दूध के विकास से संबंधित योजनाओं पर भारी भरकम राशि विनियोजित कर चुकी है। आपरेशन फ्लड के तृतीय चरण को प्रोत्साहित करने के लिए सरकार ने डेयरी उद्योग की तकनीकी उन्नति के लिए 965 करोड़ रुपये निर्धारित किए हैं, जिसका एक बड़ा हिस्सा खर्च किया जा चुका है।

हाल ही के वर्षों में सरकार ने लाइसेंस राज को समाप्त करने की नीति के अन्तर्गत डेयरी उद्योग को भी लाइसेंस से मुक्त करने का फैसला किया है। सरकार के इस कदम से डेयरी उद्योग की प्रोन्नति का मार्ग प्रशस्त होगा किन्तु तरल दूध की उपलब्धता के कम होने की संभावना है। इससे देशवासियों के स्वास्थ्य पर विपरीत प्रभाव पड़ेगा। गौरतलब है कि देश के शहरों में शिशु मृत्यु दर 62 प्रति हजार है और गांवों में मृत्यु दर 105 प्रति हजार है जो कि भयावह स्थिति को दर्शाती है। ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सा सुविधाओं के अभाव के अतिरिक्त कुपोषण भी मृत्यु दर के अधिक होने का प्रमुख कारण है। कुपोषण के प्रभाव को पौष्टिक भोज्य पदार्थों के सेवन से कम किया जा सकता है। इनमें प्रमुख है दूध क्योंकि यह पूर्ण आहार है। डेयरी क्षेत्र के औद्योगीकरण में वृद्धि से निजी कंपनियां तरल दूध बेचने के स्थान पर दूध से बने पदार्थों को बाजार में बेचना अधिक पसंद करेंगी। बाजार में दूध की मांग अधिक होने से कीमतों में वृद्धि होगी। इस स्थिति का लाभ उठाने के लिए यह संभव है कि किसान पूरा का पूरा दूध बाजार में बिक्री के लिए ले जाए और उसके मासूम बच्चे दूध की बूंद के लिए बिलख जाएं। डेयरी क्षेत्र के औद्योगीकरण से अब दूध ग्रामीण व आम शहरी लोगों के होठों से दूर होकर अभिजात्य वर्ग के लोगों के चाकलेट के जायके तक सीमित हो जाएगा। इस स्थिति से निपटने के लिए सरकार को चाहिए कि वह ऐसे नियम बनाए जिससे निजी कंपनियां दूध की एक निश्चित मात्रा तरल दूध के रूप में ही बेचें।

भारत में श्वेत क्रांति को अभी अपेक्षित सफलता नहीं मिली है। कृषक व उसके पशु दोनों की ही स्थिति शोचनीय है। बिना इनकी स्थिति को सुधारे श्वेत क्रांति की सफलता कोरी कल्पना है। एक ओर भारतीय पशु की दूध उत्पादकता अन्य विकसित देशों की तुलना में कम है दूसरी ओर भारतीय कृषक भी आर्थिक रूप से टूटा हुआ है। जब किसान को ही दो जून रोटी की व्यवस्था में कड़ी मेहनत करनी पड़ती है तो वह पशु की भलीभांति देखभाल कैसे कर पाएगा।

समूचे देश में आनन्द डेयरी की सफलता से प्रभावित होकर अनेक सहकारी समितियां आनन्द पद्धति को आदर्श मानकर कार्यरत हैं। सहकारी समितियों के माध्यम से भी दूध उत्पादकों को दूध का उचित मूल्य नहीं मिल पाता है। बिचौलिए किसानों का शोषण करने से नहीं चूकते हैं। अधिकांश डेयरी उद्योग घाटे की समस्या से ग्रस्त हैं। दूध व दूध उत्पादन के भावों में भारी बढ़ोत्तरी के बावजूद घाटे को समाप्त नहीं किया जा सका है।

सम्पूर्ण ग्रामीण परिवेश में गरीबी का साम्राज्य है, जिसे नारों तथा अनुदानों से दूर नहीं किया जा सकता। ये समस्याओं का स्थायी समाधान नहीं है। गरीबी के कारणों को गहराई से खोजक उन्हें दूर करने के उपाय किये जाने चाहिए। गांवों का विका किये बिना भारत का विकास संभव नहीं है।

श्वेत क्रांति के लाभ को व्यापक बनाते समय इस बात क ध्यान रखना होगा कि इसका लाभ हरित क्रांति की भांति चंद ब किसान ही न बटोर लें। सभी पशुपालकों को उन्नत किस्म व पशुओं व उनके लिए पौष्टिक आहार के लिए, पर्याप्त मात्रा व उचित समय पर ऋण की व्यवस्था की जानी चाहिए ताकि व अपने पशुओं से पर्याप्त मात्रा में दूध प्राप्त कर अपनी आय बढ़ सकें। किसानों को शिक्षा के प्रति जागरूक किया जाना चाहिए तभी वे अपने पशुओं के बारे में समुचित जानकारी प्राप्त कर उनके स्वास्थ्य को उत्तम बना सकते हैं तथा समय पर रोग निरोधी टीके लगाकर तथा बीमारियों से बचाव के अन्य उपाय कर अपने पशुओं की जान बचा सकते हैं। इस प्रकार उनका पशुधन स्वस्थ और नीरोग रहेगा तो किसान भी आर्थिक दृष्टि से उन्नत बन सकेगा। किसानों में जागृति के बिना संपूर्ण भारत में खुशी की लहर दौड़ना बड़ा मुश्किल है।

'शांति दीप' जटवाड़ा मानटाऊन,
सवाई माधोपुर - 322001 (राज)

(पृष्ठ 4 का शेष)

नरसिम्ह राव सरकार...

केन्द्र की वर्तमान सरकार ने चार वर्ष पूर्व जब सत्ता संभाली थी उस समय देश की अर्थ व्यवस्था काफी डांवाडोल थी। विदेशी मुद्रा का भंडार लगभग खाली था जिसकी वजह से ऋणों का भुगतान कर पाने की समस्या ऐसा विकराल रूप धारण कर चुकी थी कि देश की साख ही डूबने लगी थी। वर्तमान सरकार ने आर्थिक सुधार कार्यक्रमों को लागू करके उदारीकरण की प्रक्रिया शुरू की और बाजार व्यवस्था को प्रोत्साहन दिया कि तमाम प्रतिबंध हटा दिये गये और ऐसे कानूनों और नियमों को समाप्त कर दिया गया जिनसे काम के शीघ्र होने में अड़चनें पैदा होती थीं। बाजार व्यवस्था लागू हो जाने के बाद कल्याण कार्यक्रमों को लागू करने में काफी सुविधाएं उपलब्ध होने लगीं और ग्रामीण विकास के लिए पर्याप्त धनराशि आवंटित की जानें लगी। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम यूं तो 1979-80 में शुरू किया गया था, लेकिन हाल के तीन-चार वर्षों के दौरान इस कार्यक्रम पर तेजी से अमल किया गया; इसके फलस्वरूप ग्रामीण विकास की रफ्तार भी तेज हुई।

विकास कार्यक्रमों को और गति प्रदान करने के लिए 24 अप्रैल, 1993 को पंचायती राज संविधान संशोधन अधिनियम लागू किया गया। इसके फलस्वरूप ग्रामीण विकास के विभिन्न कार्यक्रमों को नये दृष्टिकोण से लागू किया जा रहा है। आशा है, वर्तमान सरकार द्वारा चलाये जा रहे कार्यक्रमों पर सही ढंग से अमल करके इस शताब्दी के अंत तक गांवों को स्वावलंबी और आत्मनिर्भर बनाने की दिशा में पर्याप्त प्रगति की जा सकेगी।

103, एच. सेक्टर 4,
डी. आई. जेड. एरिया,
नई दिल्ली - 110001

दुधारू पशुओं हेतु बैंक ऋण की व्यवस्था

✍ इन्दुशेखर व्यास

दुग्ध मानव के लिए सर्वोत्तम आहार है। विशेष रूप से बच्चों के लिए तो यह अमृत का कार्य करता है। छोटे बच्चों का जीवन तो दूध पर ही निर्भर होता हैं। इसलिए मानव-समाज के लिए दुधारू पशुओं का अत्यधिक महत्व है। हमारे यहां सदियों से दुधारू पशुओं को पाला जाता है तथा उन्हें उचित सम्मान दिया जाता है। गाय को तो हमारे यहां माता के समान माना जाता है तथा उसकी पूजा की जाती है क्योंकि सभी आवश्यक पौष्टिक तत्वों से भरपूर गाय का दूध, मां के दूध के पश्चात बालक के लिए सर्वाधिक उपयोगी है।

दुग्ध उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता

विश्व के अन्य देशों की तुलना में हमारे यहां दुधारू पशु अधिक हैं, परन्तु आज भी हमारे यहां अनेक बच्चों को आवश्यक मात्रा में दूध उपलब्ध नहीं हो पाता है। कई दूध पीते बच्चों को तो मां के दूध के अलावा कोई और दूध नहीं मिल पाता है। इसका कारण यह है कि हमारे यहां दुधारू पशु संख्या में तो अधिक हैं परन्तु उचित देखभाल, समुचित चिकित्सा व्यवस्था तथा पौष्टिक आहार के अभाव में हमें उनसे जितना दूध मिलना चाहिए उतना नहीं मिल पाता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि दुग्ध उत्पादन बढ़ाया जाए, जिससे देश की बढ़ती आबादी की दूध की बढ़ती हुई मांग को पूरा किया जा सके। इसके लिए आवश्यक है कि दुधारू पशुओं की संख्या में वृद्धि हो, उन्नत नस्ल के दुधारू पशुओं का विकास किया जाए तथा दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों को तकनीकी ज्ञान तथा आर्थिक सहायता उपलब्ध कराकर प्रोत्साहित किया जाए।

दुधारू पशुओं के पालन के लिए बैंक ऋण

हमारी सरकार द्वारा इस ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीयकृत, निजी तथा ग्रामीण बैंक भी पशुपालन के लिए विशेष रूप से वित्तीय सहायता सुलभ कराते हैं। बैंकों के माध्यम से जिन दुधारू पशुओं के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है उनमें मुख्य रूप से गाय तथा भैंस हैं। इन पशुओं की विभिन्न देशी तथा संकर नस्लों के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है। अगर योजना बड़ी है तो पशुओं के रहने के लिए स्थान, शेड आदि की व्यवस्था के लिए ऋण दिया जाता है। अन्यथा, छोटी योजना के लिए पशु की खरीद तथा चारे पानी की व्यवस्था के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है। अगर कृषक, अन्त्योदय योजना के अन्तर्गत चयनित परिवार से सम्बन्धित है तथा गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन कर रहा है तो उसे जिला ग्रामीण विकास अभिकरण द्वारा बैंकों के माध्यम से ऋण के अनुरूप अनुदान भी उपलब्ध कराया जाता है। वर्तमान में अनुसूचित जाति तथा जनजाति के व्यक्तियों को इकाई लागत की आधी अथवा अधिकतम 6000 रुपये तथा सामान्य जाति के व्यक्तियों को इकाई लागत की एक तिहाई अथवा अधिकतम 4000 रुपये की छूट अनुदान के रूप में उपलब्ध करायी जाती है।

दुधारू पशुओं के लिए दिये जाने वाले ऋण की वर्तमान इकाई लागत निम्नानुसार है :

(i) गाय

(अ)	राठी, थारपारकर इत्यादि जो प्रतिदिन 7 लीटर दूध देती हैं	6000/- रुपये प्रति पशु
(ब)	संकर नस्ल की गाय जो प्रतिदिन	
	8 लीटर दूध देती है	8000/- रुपये प्रति पशु
	9 लीटर दूध देती है	9000/- रुपये प्रति पशु
	10 लीटर दूध देती है	10,000/- रुपये प्रति पशु

(ii) भैंस

(अ)	ग्रेडेड मुर्रा भैंस जो प्रतिदिन 7 लीटर दूध देती है	7800/- रुपये प्रति पशु।

इसके अतिरिक्त प्रत्येक पशु को लाने के लिए अधिकतम 200/- रुपये अथवा लाने-ले जाने में भी खर्च हुई राशि ऋण के रूप में दी जाती है। पशुओं का बीमा भी करवाया जाता है। पशुओं के आहार के लिए भी ऋण उपलब्ध कराया जाता है। पहली बार दिलाये गये पशुओं को पहले माह के लिए पशु आहार उपलब्ध कराया जाता है जिसकी वर्तमान दर है :

(i) संकर नस्ल की गाय – 24.10 रुपये प्रतिदिन।

(ii) ग्रेडेड मुर्रा भैंस – 22.80 रुपये प्रतिदिन।

अगर पशुपालक के पास जमीन हो तथा वह पशु आहार उगाना चाहे तो उसे उसके लिए भी ऋण उपलब्ध कराया जाता है। वर्तमान में इसकी दर 300/- रुपये प्रति पशु है।

हीफर परियोजना

सरकार द्वारा इन दिनों एक विशेष योजना चलायी जा रही है जिसे हीफर परियोजना कहा जाता है। इस योजना के अन्तर्गत प्रथम बार ग्याभन संकर नस्ल की बछियों को जिन्हें हीफर कहा जाता है खरीद के लिए ऋण उपलब्ध कराया जाता है क्योंकि तुलनात्मक रूप से यह सस्ती पड़ती हैं। ऋण के रूप में एक कृषक को दो हीफर एक साथ उपलब्ध कराये जाते हैं। सामान्यतः गर्भ धारण किए हुए पशु का बीमा नहीं होता है परन्तु इस योजना के तहत इनका बीमा भी किया जाता है। इस योजना में स्वयंसेवी संस्थाएं, बैंक तथा जिला विकास अभिकरण सक्रिय रूप से भाग लेते हैं। जो हीफर उपलब्ध कराये जाते हैं उनकी उम्र 18-24 माह के मध्य होती है। वर्तमान में दो हीफर हेतु जो ऋण उपलब्ध कराया जाता है वह इस प्रकार है :

हीफर की लागत	13,000/- रुपये
पशु आहार की लागत	1200/- रुपये
बीमा-लागत	650/- रुपये
	14850/- रुपये

इस योजना के अन्तर्गत दिए गए ऋण के लिये कापार्ट द्वारा अनुदान भी उपलब्ध कराया जाता है।

बैंक से प्राप्त किए गए ऋण पर बैंक की ब्याज दर बहुत ही उचित है। वर्तमान में बैंक ब्याज-दर 25,000/- रुपये तक के ऋण के लिए 12 प्रतिशत वार्षिक तथा 25001/- रुपये से 2 लाख रुपये तक के ऋण पर ब्याज दर 14 प्रतिशत वार्षिक है। ऋण चुकाने की अवधि पांच वर्ष के लगभग होती है। पशुओं का बीमा बैंक के माध्यम से ही कराया जाता है। पशु की मृत्यु हो जाने की स्थिति में बैंक के माध्यम से ही सारी कार्यवाही की जाती जिससे बीमा की राशि बीमा कम्पनी से सरलता से प्राप्त हो जात है।

कृषकों के लिये दुधारू पशुओं का व्यवसाय लाभप्रद रहत है क्योंकि कृषि के पश्चात् बचे हुए समय का उपयोग किया ज सकता है, चारे-पानी की व्यवस्था किसान लोग सरलता से क सकते हैं, साथ ही नर बच्चा होने की स्थिति में भविष्य में बैल अथवा भैंसे के रूप में कृषि जोत के लिए उसका उपयोग किय जा सकता है जबकि मादा बच्चा होने पर यह दुधारू पशु के रू में उपलब्ध रहेगा।

दुधारू पशुओं का पालन अतिरिक्त आमदनी का साधन है महिलाएं भी इस कार्य में हाथ बंटाती हैं। दूध के अतिरिक्त गोब का उपयोग उन्नत खाद के रूप में किया जा सकता है। अधिक पशु होने की स्थिति में गोबर गैस संयंत्र भी लगवाया जा सकत है जिससे घर के ईंधन की समस्या को सुलझाया जा सकता है लकड़ी और कोयले के स्थान पर गोबर के उपयोग से पर्यावरण प्रदूषण से भी बचा जा सकता है।

आज हमारे देश की स्थिति को देखते हुए यह आवश्यक हो गया है कि दुधारू पशुओं के पालन को प्राथमिकता दी जाए। यह रोजगार का अच्छा साधन सिद्ध हो सकता है। कृषक लोग अपनी आमदनी इसके माध्यम से बढ़ा सकते हैं; बच्चों को उत्तम आहार उपलब्ध करा सकते हैं, कृषि हेतु उन्नत पशु प्राप्त कर सकते हैं तथा पर्यावरण की रक्षा कर सकते हैं।

डेयरी क्षेत्र के विकास हेतु कई संस्थाएं कार्यरत हैं। हरियाणा प्रदेश के करनाल शहर में एक इन्स्टीट्यूट है "नेशनल डेयरी रिसर्च इन्स्टीट्यूट"। यह वर्ष भर चलता है। डेयरी के विकास के सम्बन्ध में यहां से विस्तृत जानकारी प्राप्त की जा सकती है।

निरीक्षण एवं सर्तकता अधिकारी,
मेवाड़ आंचलिक ग्रामीण बैंक,
22, गोविन्दपुरा कालेज रोड, उदयपुर

ग्रामीण रोजगार : वर्तमान स्थिति तथा भविष्य के लिए रणनीतियां

✍प्रदीप भटनागर

म और बेरोजगारी की समस्या सदैव से ही अर्थशास्त्र का केन्द्रीय विषय रही है। पारम्परिक आर्थिक सिद्धांत के अनुसार, म को उत्पादन के चार घटकों में से एक माना जाता था। अन्य न घटक थे– भूमि, पूंजी और उद्यमशीलता। यह माना जाता ा कि उत्पादन के ये चारों घटक सीमित मात्रा में उपलब्ध होते तथा अर्थशास्त्री बड़ी गम्भीरता से इसी बात पर तर्क-वितर्क रते रहे कि इन घटकों की मांग और पूर्ति के बीच ताल-मेल । इनके मूल्य किस तरह से निर्धारित होते हैं। पश्चिमी जगत अनुभवों पर आधारित इन सिद्धांतों की भारत जैसे देशों में छ विशेष प्रासंगिकता नहीं थी, क्योंकि भारत में श्रम की धिकता है।

यह तो छठे दशक के मध्य में जाकर प्रोफेसर आर्थर लुइस 'दोहरी अर्थ व्यवस्थाओं' के बारे में लिखा, जिसमें उन्होंने कृषि त्र में 'अप्रत्यक्ष रोजगार' के रूप में श्रम के अधिक होने की चर्चा ी और दलील दी कि यह अतिरिक्त श्रम औद्योगिक क्षेत्र के लिए श्रम की असीमित पूर्ति' का साधन हो सकता है। औद्योगिक क्षेत्र ं उचित मात्रा में पूंजी के निर्माण से, धीरे-धीरे यह साधन उद्योगों ो दिया जा सकता है, जिससे श्रमाधिक्य अर्थ व्यवस्था का सम्पूर्ण कोस हो सकता है।

प्रोफेसर लुईस का लेख जब प्रकाशित हुआ तब भारत में नसंख्या विस्फोट की प्रक्रिया आरंभ हो चुकी थी और बेरोजगारी ो एक गंभीर खतरा माना जाने लगा था। तब इस लेख ने रोजगारी की, विशेषकर ग्रामीण बेरोजगारी की, अवधारणा और सके आकलन के बारे में एक क्रांतिकारी परिवर्तन का सूत्रपात किया। सन् 1891 से 1921 तक की गई जनगणनाओं में प्रमुख आर्थिक प्रश्न, प्रत्येक व्यक्ति की आजीविका के साधन से जुड़े ो, जबकि 1931 से 1951 तक की जनगणनाओं में 'व्यक्ति की आमदनी' को महत्व दिया गया। लेकिन 1961 की जनगणनाओं में, पहली बार 'बेराजगारी' के आंकड़ों को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया तथा जनसंख्या को 'कामगार' और 'गैर कामगार' की दो श्रेणियों में बांटा गया। बाद की जनगणनाओं में बेरोजगारी को मापने में और बारीकी लाई गई। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन ने उन अवधारणाओं को विकसित किया है जिन्हें 1972-73 से बेरोजगारी/अपूर्ण रोजगार के बारे में किए गए सर्वेक्षणों में अपनाया गया। इस संगठन के आंकड़ों को इस विषय पर सर्वाधिक विश्वसनीय जानकारी माना जाने लगा तथा छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) से योजना आयोग इन आंकड़ों को अपने योजना दस्तावेजों में इस्तेमाल कर रहा है।

ग्रामीण बेरोजगारी के अनुमान

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण के वर्तमान अनुमानों (48वां चक्र जनवरी-दिसम्बर 92) के अनुसार देश में ग्रामीण श्रमिकों की कुल संख्या 24.4 करोड़ है। इसमें रोजगार में लगे और बेरोजगार दोनों शामिल हैं। राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण ने अपने नवीनतम सर्वेक्षणों में बेरोजगारी की दो अवधारणाओं को अपनाया है–'सामान्य स्थिति के अनुसार बेराजेगारी' और 'वर्तमान साप्ताहिक स्थिति के अनुसार बेरोजगारी'। 'सामान्य स्थिति की बेरोजगारी' से तात्पर्य लम्बे समय तक बेरोजगारी रहने से है, जिसमें सम्बद्ध व्यक्ति सर्वेक्षण की अवधि से पूर्व एक वर्ष या अधिक समय से लगातार बेरोजगार है।

सामान्य स्थिति पर आधारित बेरोजगारी को आंकने की अवधारणा से पता चलता है कि ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 1.07 प्रतिशत श्रमिक या 26 लाख से अधिक व्यक्ति बेरोजगार हैं। इस मापदण्ड की कुछ अन्य विशेषताएं इस प्रकार हैं :

लेखक ग्रामीण क्षेत्र के रोजगार मंत्रालय में उप सचिव हैं

- यह मापदण्ड, ऐसे शिक्षित व प्रशिक्षित व्यक्तियों पर अधिक लागू होता है, जो नियमित रोजगार की तलाश में हैं, तथा जिन्हें संभवतया अस्थायी रोजगार नहीं चाहिए।
- सामान्य स्थिति की लगभग 70 प्रतिशत बेरोजगारी 15 से 29 वर्ष के आयु में व्याप्त है।
- शहरी क्षेत्रों में यह ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में अधिक है।
- महिलाओं की अपेक्षा यह पुरुषों में अधिक है।

भारत में बेरोजगारी का अधिक महत्वपूर्ण सूचक 'वर्तमान साप्ताहिक स्थिति' के अनुसार बेरोजगारी पर आधारित मापदण्ड है। इसके अंतर्गत पिछले सात दिनों के लिए किसी व्यक्ति के काम धंधे की स्थिति दर्ज की जाती है। इस तरह सीज़न आधारित/अस्थायी बेरोजगारी को अधिक बेहतर तरीके से आंका जाता है। 'साप्ताहिक स्थिति' के अनुसार देश में आंकी गई बेरोजगारी की कुछ विशेषताएं इस प्रकार हैं :

- यह शहरी क्षेत्रों (41• प्रतिशत) की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्रों में (59 प्रतिशत) अधिक है।
- ग्रामीण परिवारों में, यह श्रमिक घरों में स्व-रोजगार वाले घरों की अपेक्षा अधिक है।
- क्षेत्रीय स्तर पर भारी अंतर है, सर्वाधिक बेरोजगारी केरल में है, जिसके बाद तमिलनाडु और असम का नम्बर आता है तथा राजस्थान में ऐसी बेरोजगारी न्यूनतम है।

'दैनिक नियति' के अनुमानों के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार श्रमिकों की कुल संख्या का लगभग 1.9 प्रतिशत यानी लगभग 46 लाख है। यह दर कई विकसित देशों की बेरोजगारी प्रतिशत से अपेक्षाकृत कम है तथा इसे राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण संगठन के सर्वेक्षण करने के तरीके से स्पष्ट किया जा सकता है। किसी व्यक्ति को बेरोजगारों की श्रेणी में रखने का मापदंड उस व्यक्ति से यह पूछना है कि क्या वह संदर्भित अवधि के दौरान काम कर रहा/रही थी तथा क्या काम तलाश कर रहा/रही थी या काम के लिए उपलब्ध था/थी। बेरोजगार कहलाने के लिए उस व्यक्ति का काम की तलाश में होना है तथा यह भी जरूरी है कि उसने संदर्भित अवधि में प्रतिदिन एक घंटा भी काम न किया हो– ग्रामीण भारत के संदर्भ में यह अत्यन्त ही चरम स्थिति प्रतीत होती है।

ग्रामीण भारत में अधिकांश हिस्सों में लोगों के पास पूर्ण रोजगार नहीं होता है, परंतु सामाजिक परम्पराओं के कारण वे एक ही जगह रहना पसंद करते हैं तथा चूंकि उन्हें अपने आस-पास के अलावा अन्य स्थानों पर रोजगार के अवसरों का ज्ञान नहीं होता, इसलिए वे खेती से बाहर या अपने गांवों से बाहर काम धंधा ढूंढ़ने नहीं जाते हैं। यह स्थिति गांवों में रहने वाली स्त्रियों के बारे में अधिक सही है। यदि ऐसे बेरोजगार व्यक्तियों को भी बेरोजगारों की संख्या में जोड़ लें तो बेरोजगारी/अपूर्ण रोजगार प्राप्त व्यक्तियों की संख्या में लगभग दो करोड़ व्यक्तियों की या देश के ग्रामीण श्रमबल के आठ प्रतिशत से अधिक की वृद्धि हो जाएगी।

ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर

ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो ग्रामीण इलाकों से शहरों और कस्बों में श्रम पलायन विकास प्रक्रिया की विशेषता रही है। भारतीय स्थिति की विशेषता यह है कि शहरी क्षेत्र के लिए यह संभव नहीं होगा कि सभी बेरोजगारों को रोजगार दे सके। शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों की मजदूरियों में 30 प्रतिशत के अंतर को प्रोफेसर लुईस ने ग्रामीण श्रमिकों को औद्योगिक क्षेत्र के प्रति आकर्षित करने के लिए पर्याप्त माना। वास्तव में यह अंतर इससे कहीं ज्यादा है तथा इसकी वजह से अभूतपूर्व स्तर पर नगरों की ओर श्रमिकों का पलायन हुआ है। लेकिन औद्योगिक क्षेत्रों में सबके लिए पर्याप्त रोजगार के अवसर नहीं जुटाये जा सके हैं। यहां तक कि यदि उदारीकरण और निजीकरण की नई आर्थिक नीति के परिणामस्वरूप शहरी क्षेत्रों में रोजगार के अवसरों में तेजी से वृद्धि होती है तो भी गांवों में उपलब्ध अतिरिक्त श्रम-बल को शहरों में रोजगार जुटाना संभव नहीं हो पाएगा। अतः समाधान यही है कि ग्रामीण क्षेत्र में रोजगार के और अधिक अवसर उत्पन्न किए जाएं।

ग्रामीण इलाकों में रोजगार के अवसरों का पता लगाने के लिए दो श्रेणियों को तत्काल स्पष्ट रूप से पहचाना जा सकता है :

1. कृषि और सम्बद्ध क्षेत्र
2. गैर कृषि क्षेत्र।

ृषि क्षेत्र

कृषि क्षेत्र में, स्वभावतः निम्नलिखित तरीकों से रोजगार के तिरिक्त अवसर पैदा हो सकते हैं :

(क) सिंचाई का विस्तार, जिसके फलस्वरूप एक फसली क्षेत्र को बहुफसली क्षेत्रों में परिवर्तित किया जा सकता है, जिससे उसी भूखंड पर किए जाने वाले काम की मात्रा में कई गुना वृद्धि होती है।

(ख) खेतों में नई-नई गतिविधियों का प्रयोग, जिससे जुताई, निराई, खाद डालने, कीटनाशक छिड़कने, रोपण आदि की नई गतिविधियों का प्रयोग करने से काम में वृद्धि होती है।

इन दोनों घटकों से पैदावार में होने वाली वृद्धि से बीज तैयार रने, कुटाई-पिसाई, अनाज की ढुलाई और भंडारण से और धिक रोजगार के अवसर उत्पन्न होंगे। बेरोजगारी के आंकड़े ताते हैं कि इस बात में काफी दम है कि पंजाब, हरियाणा, उत्तर देश जैसे अधिक पैदावार वाले राज्यों में बेरोजगारी न्यूनतम है।

म्बद्ध क्षेत्र

संम्बद्ध क्षेत्रों में, रोजगार के सर्वाधिक अवसर पशुपालन के त्र में है। इस क्षेत्र में रोजगार गांव में ही उपलब्ध होता है तथा हिलाओं व बच्चों को भी लाभकारी रोजगार मिल जाता है। इस ाम में श्रमिकों की भारी संख्या में जरूरत पड़ती है तथा चमड़े ौर हड्डियों के संसाधन, कुक्कुट आहार/पशु आहार के उत्पादन, रागाहों के विकास तथा चारा उत्पादन के क्षेत्रों में भी काफी लोगों ो रोजगार मिलता है।

देश में 2,900 किलोमीटर लम्बी नदियों और 20 लाख क्टेयर क्षेत्र में फैले जलाशयों को देखते हुए मछली पालन के त्र में रोजगार की काफी सम्भावनाएं है। जल संसाधन क्षेत्र के पर्याप्त उपयोग के कारण, इस क्षेत्र में अपेक्षाकृत कम प्रतिशत ो रोजगार मिला हुआ है। इसका मुख्य कारण यह है कि भीतरी त्रों में मछली पालन का काम अंशकालिक तौर पर किया जाता , जबकि तटवर्ती मछली पालन मौसमी धंधा होता है, जो समुद्र रहने वाली मछलियों के तट के निकट आने पर आधारित होता । जलाशयों, गांवों के जोहड़ों और दलदली क्षेत्रों में जल-भूमि े कुशल उपयोग के साथ-साथ मछलीमार पट्टों के अधिकारों के ाभार्थियों के लिए उचित प्रशिक्षण कार्यक्रमों से इस क्षेत्र में अपना ्णकालिक काम धंधा करने वाले व्यक्तियों की संख्या में भारी वृद्धि हो सकती है। तटवर्ती क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर गहरे समुद्र में मछली पकड़ने को बढ़ावा देने से समुद्र जन्य आहार के परिरक्षण, प्रसंस्करण और विपणन के क्षेत्र में भारी संख्या में रोजगार के अवसर उत्पन्न हो सकते हैं।

गैर कृषि क्षेत्र

ग्रामीण भारत की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि वैसे तो दशकों से खेती के काम में प्रमुखतया लगे लोगों की संख्या 70 प्रतिशत के आसपास रही है, फिर भी गैर-कृषि कामों से भी गांवों में काफी रोजगार मिलता है। इस क्षेत्र में 15 से 20 प्रतिशत तक श्रम-बल काम करता है। हथकरघा, हस्तशिल्प, ग्रामोद्योग, रेशम कीट पालन, खादी, छोटे-मोटे धंधों, भवन निर्माण, प्रसंस्करण और परिवहन के क्षेत्रों में कम पूंजी से किए जाने वाले धंधे भी भूमिहीनों की आमदनी के महत्वपूर्ण साधन हैं तथा इनसे छोटे व गरीब किसानों को भी अतिरिक्त आमदनी होती है।

ग्रामीण और लघु उद्योग

देश ने कई वस्तुओं के उत्पादन को पूर्णतया ग्रामीण तथा लघु उद्योगों के लिए सुरक्षित रखने की नीति अपनाई है। इस क्षेत्र के व्यापक प्रसार के कारण, इसमें अतिरिक्त रोजगार अवसरों का सृजन, देश में ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या से निपटने की रणनीति का एक महत्वपूर्ण हिस्सा बना रहना चाहिए क्योंकि स्थापित औद्योगिक केन्द्रों में ही नौकरी के अवसर बढ़ाने पर जोर देने पर भी बेरोजगारी की समस्या हल करने में कोई मदद नहीं मिलेगी जब तक ग्रामीण इलाकों में ही अतिरिक्त श्रम बल बना रहेगा।

उपरोक्त सभी क्षेत्रों में अतिरिक्त रोजगार क्षमता उत्पन्न करने में समय लगता है। और फिर, लघु व ग्रामोद्योग की श्रम संबंधी जरूरतों को पूरा करने के लिए यह भी जरूरी होगा कि श्रमिकों में एक न्यूनतम स्तर की दक्षता भी मौजूद हो। कृषि के क्षेत्र में अतिरिक्त रोज़गार के अवसर जुटाना इस बात पर भी निर्भर करेगा कि किसानों को एक फसली क्षेत्रों को बहुफसली में बदलने में कितना समय लगेगा और आधुनिक कृषि तकनीकों को अपनाने में कितनी तेजी आएगी। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम जैसे कार्यक्रमों के माध्यम से पशुपालन तथा अन्य सहायक क्षेत्रों में अपने काम धंधों को बढ़ावा देने के लिए ऋण की भी जरूरत पड़ेगी और जैसा कि समन्विन ग्रामीण विकास कार्यक्रम के पिछले 15 वर्षों के अनुभव ने दिखाया है कि निर्धनतम बेरोजगारों को इस कार्यक्रम का लाभ अक्सर मिल नहीं पाता क्योंकि बैंक भी गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले उन लोगों को ही ऋण देते हैं जो अपेक्षाकृत बेहतर स्थिति में हैं।

दिहाड़ी मजदूरी

बेरोजगारों में भारी संख्या ऐसे लोगों की है जो भूमिहीन हैं, अकुशल हैं तथा जो दिहाड़ी मजदूरी पर निर्भर हैं। बढ़ती जनसंख्या के कारण छोटे और गरीब किसानों की पहले ही से छोटी जोतों की भूमि के और टुकड़े हो जाने से भूमिहीन श्रमिकों की संख्या बढ़ती जा रही है। देश के कई हिस्सों में खेती के मंदी वाले सीजन में मजदूरों को पलायन के लिए मजबूर होना पड़ता है या फिर स्थानीय स्तर पर अत्यंत ही कम मजदूरी पर काम करने पर मजबूर करके उनका शोषण किया जाता है। ऐसी स्थिति में, लोक निर्माण कार्यक्रम अल्पावधि समाधान उपलब्ध कराते हैं। पिछले दो-एक दशकों से देश में ऐसे कार्यक्रम चल रहे हैं। लेकिन एक तो इस बात के लिए इनकी आलोचना की जाती है कि ये कुशल नहीं हैं तथा इनसे जो सार्वजनिक परिसम्पत्तियां बनती हैं, वे टिकाऊ नहीं होती तथा ये अब ऐसे कार्यक्रम बन कर रह गए हैं, जिनसे गरीबों को आमदनी तो होती है, परन्तु परिणामस्वरूप टिकाऊ बुनियादी सुविधाएं नहीं बन पाती हैं।

अब यह अधिक स्पष्ट होता जा रहा है कि पूर्णतया सरकारी एजेंसियों या लाभार्थियों के अपने समूहों द्वारा चलाए जाने वाले लोक निर्माण कार्यक्रम न तो रोजगार के अवसर पैदा करने में और न ही टिकाऊ सार्वजनिक परिसम्पत्तियां निर्मित करने में सफल हो सके हैं। इन योजनाओं में ठेकेदारों की भागीदारी के निषेध से काम पर लगाए गए मजदूरों का इष्टतम उपयोग नहीं हो पाया है। एक तरीका यह है कि 'अकुशल' और 'कुशल' दोनों ही तरह के श्रम-प्रधान, लोक निर्माण कार्यक्रम साथ-साथ चलाएं जाएं— उदाहरण के लिए 'काम के बदले अनाज कार्यक्रम' जिसमें न्यूनतम अधिसूचित मजदूरी दी जाती है और निर्धनतम बेरोजगार मजदूरों को चुना जाता है, जिनके साथ बुनियादी सुविधा निर्माण कार्यक्रम चले, जिसमें ठेके पर मजदूरों को लगाया जाता है, जिन्हें बाजार भाव पर मजदूरी दी जाती है, परंतु स्पष्ट शर्त यह होती है कि उपकरणों और मशीनरी का न्यूनतम इस्तेमाल किया जाएगा, चाहे ऐसा करने के लिए दुगुने या तिगुने श्रम-बल का प्रयोग क्यों न करना पड़े। देश के मौजूदा दिहाड़ी रोजगार कार्यक्रमों को इस दृष्टि से संशोधित किया जा सकता है।

नीतिगत-आशय

भारत में ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या, मूलतः मंदी के सीजन की बेरोजगारी समस्या है। जम्मू कश्मीर, राजस्थान और असम जैसे उच्चतम मौसमी अंतर वाले राज्यों में बड़े पैमाने पर एक फसली खेती की जाती है और वहां समाधान यही है कि बड़ी मझौली और लघु सिंचाई योजनाओं पर अधिक धन खर्च करके सिंचाई सुविधाओं का विस्तार किया जाए तथा आधुनिक फसल तकनीकों को बढ़ावा देने के एकजुट प्रयास किए जाएं। ग्रामीण बेरोजगारी में न्यूनतम मौसमी अंतर वाले पंजाब, हरियाणा और उत्तर प्रदेश जैसे राज्य भी हैं जहां सिंचाई सुविधाओं और नवीन कृषि तकनीकों का व्यापक उपयोग हुआ है। ऐसे राज्यों को अपने बढ़ते ग्रामीण श्रम-बल को रोजगार देने के लिए गैर-कृषि क्षेत्रों की रोजगार-जनक योजनाओं पर ध्यान केन्द्रित करना पड़ेगा। बाकी सभी राज्यों के लिए सर्वोत्तम यही रहेगा कि वे दोनों नीतियों का मिला-जुला उपयोग करें। वैसे, अधिकांश राज्यों में 'कुशल' और 'अकुशल' दोनों ही श्रम प्रधान तकनीकों वाले दिहाड़ी रोजगार कार्यक्रम जारी रहने चाहिए, जो अल्पावधि में चलाए जाएं ताकि श्रम-पलायन को रोका जा सके तथा निर्धनतम बेरोजगारों को जीवन निर्वाह का बेहतर स्तर उपलब्ध कराया जा सके और साथ ही भीतरी इलाकों में बुनियादी सुविधाओं के निर्माण में सहयोग मिल सके।

अनुवाद : जया ठाकुर,
बी-212, नानक पुरा,
नई दिल्ली

कुरुक्षेत्र मंगाने का पता :

व्यापार व्यवस्थापक
प्रकाशन विभाग
पटियाला हाऊस
नई दिल्ली-110001

एक प्रति : पांच रुपये **वार्षिक चंदा : 50 रुपये**

मातृत्व : सबसे बड़ी शक्ति और सबसे बड़ी कमजोरी

✍आशारानी व्होरा

मातृत्व नारी की सबसे बड़ी शक्ति है और यही सबसे बड़ी कमजोरी भी। मां एक शक्ति है कि वह सृजक है, नियन्ता है, मानव-शिशु की पालनहार है और इस नाते सृष्टि के विकास-क्रम को आगे बढ़ाने वाली है। पुरुष प्रौढ़ हो जाने पर भी किसी न किसी रूप में उसके आंचल का आधार खोजता है। वृद्ध हो जाने पर भी कहीं उसके दिए संस्कारों से बंधा है। ये संस्कार आयुपर्यन्त साथ चलकर मनुष्य के जीवन को संचालित करते हैं। तभी तो कहते हैं, मनुष्य वैसा ही बनता है, जैसा उसे उसकी मां ने बनाया।

इन्हीं संस्कार-गुणों और उन्हें निर्धारित करने वाली मातृत्व-शक्ति को परखते हुए, स्वामी विवेकानन्द ने मां का सर्वोत्तम मूल्यांकन किया था। उन्होंने कहा, "आप मुझे केवल सौ अच्छी माताएं दे दीजिए, मैं दुनिया का नक्शा बदल दूंगा।"

शक्ति भी, कमजोरी भी

यही शक्ति कमजोरी कैसे बनती है? इसका उत्तर कुछ शब्दों में देना कठिन है। पर यह उत्तर इतना व्यापक और इतना सरल है कि हर मां जानती है।

इतना भरा पूरा मां का दिल! छेड़ो तो छलकता ही जाए। समझ में नहीं आता, कहां से शुरू करूं?

नारी कितनी भी ऊंची हो, समाज और राष्ट्र के लिए उसका जीवन अन्यथा कितना भी उपयोगी हो, मातृत्व के बिना वह अपने जीवन को सार्थक नहीं पाती। इसी के लिए वह पति-पुरुष के समक्ष अभ्यर्थिनी है। इसी के लिए वह विवाह-बंधन में बंधती है और न जाने कितने दायित्व ओढ़ती चलती है। पर उस की शक्ति के कमजोरी में बदलते जाने की इंतहा तब आती है, जब बेमेल विवाह में, विघटित परिवार में, केवल संतान की खातिर कष्ट-दर-कष्ट झेलती हुई भी अंततः वह संतान के हाथों ही हारती है। और तब इस कदर टूटती है कि फिर उसके जुड़ाव के लिए शायद कुछ भी शेष नहीं बचता।

यह शक्ति, सार्थकता और यह हार, यह टूटन एक मां के रूप में सर्वत्र, सार्वभौमिक रूप से विद्यमान है। मर्दाना किस्म की शासक नारी से लेकर साधारण-सी दब्बू नारी तक। मातृत्व में वह शेरनी भी है, भीगी बिल्ली भी। संतान के लिए अधिक से अधिक मेहनत करने वाली और खुशी-खुशी हर कष्ट सहन कर जाने वाली सशक्त कठोर तपस्विनी भी और उसकी गलतियों को नजरअंदाज करने वाली, ममता के मोह में अपना सर्वनाश तक आमंत्रित करने वाली एक निहायत कमजोर औरत भी।

समय की धार में पुराने मूल्य घिसते हैं, बदलते हैं, नए बनते हैं। आज की मां भावुक कम, व्यावहारिक अधिक हो सकती है। पर मातृत्व से संबंधित ये मूल्य इतने शाश्वत हैं कि युगों के बाद भी इनमें बहुत कम परिवर्तन आया है।

प्रश्न उठता है कि मां के प्रति संतान की प्रतिक्रिया भी क्या इतनी ही सार्वभौम, इतनी ही शाश्वत है?

शायद नहीं। यहां संस्कार और व्यवहार में पर्याप्त अन्तर दीखता है। केवल इसलिए नहीं कि नई पीढ़ी पीछे के बजाए आगे अधिक देखती है, इसलिए भी कि आज भौतिकवादी युग में व्यक्तिगत मूल्य समूहगत मूल्यों पर हावी हो गए हैं और निजी स्वार्थ-पूर्ति के लक्ष्य में संस्कारगत कमजोरी या भावुकता दबा दी जाती है। रह जाता है मात्र फर्ज़ - कहीं कम, कहीं ज्यादा, कहीं उथला, कहीं गहरा, तो कहीं औपचारिकता भरा। कभी-कभी यह औपचारिकता भी भुला दी जाती है तो संबंधों में तिक्तता आने लगती है। और यहीं से शुरू होती है मां की टूटन।

तो क्या मां प्रतिदान मांगती है? क्या मां का प्रेम इतना उथला होता है कि उसे प्रतिदान से पूरने की जरूरत आ पड़ती है?

शायद नहीं। फिर क्या होता है, इस टूटन के पीछे?

विभिन्न वर्ग, अनेक माताएं, उत्तर एक

एक बुद्धिजीवी मां श्रीमती कुंतला का उत्तर था, "अपनी संतान पर अपनी सारी खुशियां लुटा देने वाली मां संतान की खुशी में ही अपनी खुशी देखती है, देखती ही नहीं, उसमें शामिल होने की इच्छा भी रखती है। वह संतान के लिए कुछ करके, उसके लिए खुशियां जुटाकर, उसके माध्यम से शायद अपने बीते जीवन की अधूरी साधों को भी पूरा करना चाहती है। पर उसे इस

अधिकार से भी जब वंचित कर एकाकी और उपेक्षित छोड़ दिया जाता है तो वह टूटने लगती है। क्या इसे आप प्रतिदान चाहना कहेंगे? प्रतिदान की मांग कहां है यह? है भी तो भौतिक प्रतिदान से कितनी अलग, कितनी अलौकिक है यह — नहीं?

श्रीमती लता बर्मन को सुबह से रात तक अपने बच्चों की सेवा में तन्मय देखकर जब मैंने यही प्रश्न उनके सामने रखा तो उन्होंने कहा, "मां के लिए यह एक प्राकृतिक मूल भावना है। इसे न फर्ज़ से बांधा जा सकता है, न प्रतिदान की मांग से छोटा किया जा सकता है। जानवरों में, पक्षियों में देखिए, जब तक बच्चा आत्मनिर्भर नहीं हो जाता, मां उसकी सुरक्षा के लिए हर दम चिन्तित रह, उसके चारों ओर सुरक्षा का घेरा डाले रहती है। फिर जैसे ही बच्चा स्वयं उठना, चलना, अपना पेट भरने का उपक्रम करना सीख जाता है, मां उसकी ओर से निश्चिंत हो जाती है और उसके साथ ही अपना बंधन ढीला कर देती है। प्रतिदान के लिए उसे साथ बांधे नहीं रखती। मनुष्य का बच्चा चूंकि देर से आत्मनिर्भर हो पाता है, सामाजिक प्राणी होने से उसकी शिक्षा-दीक्षा, पालन-पोषण का भार एक लंबे समय तक मां-बाप के त्याग की अपेक्षा रखता है तो प्रतिदान के रूप में समाज ने संतान के लिए भी कुछ फर्ज़ बना दिए हैं। अब यह संतान पर निर्भर है कि वह यह अपेक्षा पूरी करे या नहीं। न करे, तो समाज ही उसमें आड़े आएगा, मां नहीं। मां की भावना इस बेरुखी से कुंठित तो हो सकती है, बदल नहीं सकती।"

श्रीमती सती रानी अपने बच्चों के लिए सब करते हुए भी उन्हें अधिक लाड़ देकर, उनके हाथ में अधिक पैसे देकर और उनकी गलतियों को नजरअंदाज़ करके उन्हें बिगाड़ती रहीं। उनकी जिठानी, बहन और पड़ोसिन ने कभी इस ओर संकेत किया तो उनके भीतर की कमजोर मां बिगड़ उठती, बुरा मान जाती। बाद में खीझ कर वह बच्चों पर हर समय झल्लाने लगीं। अब, जब बड़ा लड़का असामाजिक-सी प्रवृत्तियों का शिकार हो, हाथ से निकलने लगा तो कहती हैं, "सब भाग्य का दोष है। खोटे करम किए थे इसलिए यह दिन देखना पड़ा।" उनकी समझदार जिठानी ने फिर समझाया, "देखो, लड़के को भला-बुरा कह कर, हर समय कोंच कर दुखी करने या उसे बदनाम करने से बात और बिगड़ेगी। बहुत बार भटकने के बाद ही उनमें सुधार आता है। गलती करके सीखने पर वे स्वयं ही रास्ते पर आ जाते हैं, जबकि बदनाम हो जाने पर लौटने के रास्ते तंग हो जाते हैं।" अब उन्हें यह सीख अच्छी लगी। कहने लगीं, "चलो, किसी ने तो कहा कि लड़का ठीक हो जाएगा। किसी ने तो हमदर्दी दिखाई, वर्ना सभी ने चर्चा-आलोचना कर करके मुझे इतना दुखी किया कि जीने की चाह की खत्म हो गई थी।" क्यों आया, उनमें यह परिवर्तन? इसलिए कि अनजाने में संतान का अहित कर बैठने वाली मां भी उसका अहित न चाह सकती है, न देख सकती है।

मूल भावना समान

निम्न वर्ग की माताओं के पास शिक्षा नहीं। संभ्रान्त-शालीनता के संस्कार नहीं। सीधी भाषा में तर्क-वितर्क या विश्लेषण वे नहीं कर पाती। पर सीधी, सरल और खुरदरी भाषा में भी उनके जो उत्तर मिले, वे मां के हृदय की समान, सार्वभौमिक अभिव्यक्ति के अच्छे खासे उदाहरण हैं : चने-मुरमुरे बेचने वाली श्रीमती तारावंती ने कुछ भी उत्तर न दे, ठंडी सांस भर कर कहा, "भगवान औलाद का दुख किसी को न दिखाए।"... ग्वालिन किशनी बाई का उत्तर था, "भगवान ऐसी औलाद सबको दे, मेरे बेटे तो सोना हैं, सोना।" और कहते हुए उसकी गरदन ऊंची उठ गई थी। वृद्ध मजदूरनी मोती बाई ने झुर्रियों में से झांकती अपनी कीचड़ भरी आंखें मिचमिचा कर कहा, "बेटा भी कमावे है, बहू भी कमावै है, पर मेरे भाग मां नाहीं। जे बुढ़अन हाड़ अब मजूरी ना कर सकें। पण दिहाड़ी भर हाड़तोड़ के भी बहू मोहे चैन से रोटी नां खाण देवै। कहे है गांव चल जा। वहां अपणे खेत पे रह।"

"तो तुम गांव क्यों नहीं चली जातीं? जब अपना खेत है तो..."

बात काट कर उसने कहा, "खेती क्या इकलै बणै? एक छोटा-सा खेत है। पट्टे पर चढ़ाओ तो दूसरा क्या कमा के खिलावै? फिर मैं इकली वहां का करूं? बइठ के सोच सोचा करूं? इकला पूत है। इहां बहू बिज्जती करे है, पर जे संतोख तो है कि बिटवा अंखियन के सामणे है।" हाय री मा, कष्ट झेल कर भी बेटा आंखों के सामने रहना चाहिए।

विधवा लक्ष्मी सुबह से शाम तक कई घरों का चौका-बर्तन करती है। शाम को बेहद थक कर जाने पर भी रात को तंदूर पर मुहल्ले भर की रोटियां सेंकती है। वह इतनी मेहनत क्यों कर रही है? बीमार पड़ जाएगी तो क्या करेगी? पूछने पर उसका उत्तर था, "हम तो अनपढ़ रह गए, इसलिए यह भाड़ झोंक रहे हैं। बेटे पढ़ जावैं तो आगे उनकी जिन्दगी सुधर जावे। इसके लिए मेहनत तो करनी ही पड़ेगी न!" और उसने आंखों में चमक भर कर बताया, "एक लड़का दसवीं में है, दूसरा बारहवीं में।"... "और

बेटियां?''.... ''दो ही बेटियां हैं। बड़ी पांच क्लास पढ़ के अब साथ काम कर रही है। छोटी सातवीं में है। सोचती हूं, इसे दसवीं तो करा ही दूं। जरूरत पर कमाना पड़े तो चौका-बर्तन तो नहीं करेगी। पढ़ी होने से अच्छा वर-घर भी मिल जावे सायद।''

''पर इस तरह हर समय पिस कर तुम बीमार पड़ गई तो तुम्हारा क्या होगा?''

''सो तो अभी भी ठीक नहीं रहती हूं। पर आज मैं इन्हें देख रही हूं तो कल ये मुझे नहीं देखेंगे क्या?'' कितना सरल उत्तर और कितना सरल विश्वास! यह मां मेहनत से कहीं नहीं टूटी। पर बाद में शरीर जवाब दे जाने पर यदि बेटे-बेटियों ने मुंह मोड़ लिया तो जरूर टूट जाएगी।

अमीर-गरीब, शिक्षित-अशिक्षित, पिछड़ी हुई, प्रगतिशील, सभी वर्गों की अनेक माताओं से बातचीत करने पर तरह-तरह के उत्तर मिले। प्रतिक्रियाएं कटु, तिक्त भी थीं और मीठी, कर्ण-मधुर भी। शिकवे-शिकायतें भी, प्रशंसात्मक टिप्पणियां भी। पर मूल भावना समान और अपेक्षा भी समान। उसमें कोई वर्ग-वैभिन्नता नहीं। मां मां है। नारी का अन्य कोई भी रूप उसकी समानता नहीं कर सकता।

पद-प्रतिष्ठा का अवमूल्यन

पर एक सांस्कृतिक समस्या अब दिनोंदिन अधिक उग्र रूप में सामने आ रही है। हमारी संस्कृति में मां का रूप प्रधान रहा है, पाश्चात्य संस्कृति में पत्नी का। इस मूल अन्तर को न समझ पाने से और पाश्चात्य संस्कृति की हू-ब-हू नकल से अब हमारे यहां भी मां का दर्जा गिरा है। उसकी प्रतिष्ठा का अवमूल्यन हुआ है। लड़के-लड़कियों में भेद और दहेज जैसी कुरीतियां भी मां की तसवीर को धुंधला करने में सहायक हुई हैं। पर मुख्य बदलाव आया है, अपने सांस्कृतिक अवमूल्यन से। व्यक्तिगत आजादी को स्नेह-संरक्षण के मुकाबले अधिक तरजीह दी जाने लगी है। कुछ हद तक नई स्थितियों में यह स्वाभाविक भी है। पर मुश्किल यह है कि इस बदलाव को नई पीढ़ी ने जितना ग्रहण किया, उतना माताओं ने स्वीकार नहीं किया है। तो परिवारों में विघटन आया है। हमारे यहां वृद्धों के लिए सामाजिक सुरक्षा के साधन नहीं के बराबर हैं। वृद्धाश्रम और 'क्रेच' जैसी संस्थागत व्यवस्थाएं हमारी संस्कृति के अनुरूप हैं भी नहीं। इसीलिए यहां जो मुट्ठी भर ये संस्थाएं खुली हैं, वे अपने उद्देश्य में सफल सिद्ध नहीं हुईं। और सुरक्षा के अभाव में लड़कों को इतना जरूरी समझा गया कि परिवार-नियोजन कार्यक्रम को वह सफलता नहीं मिल सकी, जो इतने भारी साधनों के इस्तेमाल से मिलनी चाहिए थी। उल्टे ज़ोर-जबरदस्ती का नतीजा बहुत भयानक रूप में सामने आया तो इस समस्या को लेकर घर-घर में तनाव तन आया है और उस तनाव में वृद्धों की समस्या और उलझ कर रह गई है।

एक प्रसिद्ध जनाना अस्पताल की 'मेडिको सोशल वर्कर' ने कहा, ''बड़ा दुख होता है कि यह देखकर कि बूढ़ी मांओं को इलाज के बाद ठीक हो जाने पर भी घर लाने ले जाने से कतराते हैं। टालमटोल कर उन्हें कुछ समय और यहीं रखने रखने का आग्रह करते हैं, जबकि हमारे पास जगह नहीं होती। कुछ मामलों में तो वे ले जाने के लिए तैयार ही नहीं होते और हमें हार कर उन्हें किसी 'होम' में भेजने के बारे में सोचना पड़ता है। प्रायः इलाज के लिए भी उन्हें तभी लाया जाता है, जबकि केस बिगड़ चुका होता है कि मृत्यु अस्पताल वालों के सिर मढ़े। या वे उन्हें तब लाते हैं, जबकि घर पर देखभाल की व्यवस्था नहीं कर पाते।'' बेशक ये मामले अभी अपवाद रूप कहे जा सकते हैं। पर जिस तरह इन अपवादों की संख्या बढ़ रही है, वह दिन दूर नहीं दिखाई देता, जब यहां भी उनके लिए केवल आश्रमों में ही जगह रह जाएगी। पर भारतीय मानस के लिए वह दिन बहुत दुर्भाग्यपूर्ण होगा, क्योंकि सहज भाव से आंतरिक स्वीकृति उसे नहीं मिल पाएगी। क्या पश्चिम में भी पूरी तरह मिल पाई है? और असीमित साधन जुटाकर भी क्या वे लोग अकेलेपन की असुरक्षा और भावात्मक हानि का समाधान खोज पाए हैं? क्या इसने वहां नई-नई विकृतियों को जन्म नहीं दिया है? तब उस ओर बढ़ते कदमों के नतीजों को यहां समय रहते क्या नहीं सोचा जाना चाहिए?

एक दिन सख्त सर्दी के दिनों मेरा फोटोग्राफर मुझे मुंह-अंधेरे उठाकर समीप के दुग्ध-डिपो पर ले गया। फिर बोला, ''आप इस विषय पर क्यों नहीं लिखतीं? देखिए, युवा बेटे-बेटियां-बहुएं घर पर रजाई में दुबके हैं और जिन वृद्धों को सर्दी अधिक सताती है, वे तड़के उठ कर यहां लाइन में लगे हैं।'' सचमुच देखा, जल्दी नंबर लगाने के लिए कुछ वृद्ध माताएं या सासें (ससुर भी) कंबल ओढ़े वहीं पास के बगीचे में गुड़ीमुड़ी हो लेटी-बैठी थीं और नंबर का बर्तन लाइन में रखा था। कई जगह कामकाजी बहुओं ने सास को घर की नौकरानी और बच्चों की आया भर का दर्जा दे रखा है। विभिन्न कारणों से सास के पद का अवमूल्यन मां के पद की अपेक्षा अधिक हुआ है। इतना कि यह एक अलग लेख का विषय है।

पर मेरे अपने मत में, अभी यहां स्थितियां किसी भी पक्ष में निश्चयात्मक नहीं हैं। कहीं अब भी सासें अपने प्राचीन कुंठित

रूप में मौजूद हैं, कहीं बहुओं की ज्यादतियां बढ़ चली हैं, तो कहीं दोनों पक्षों की ओर से काफी समझदारी का परिचय दे, स्थितियों को नया मोड़ दिया जा रहा है। जरूरत है, इस मोड़ को पहचानने की और पूर्व कुंठाजन्य आचरणों को नई रोशनी में सुधारने-संवारने की। संतान के प्रति मां की मूल भावना व उसके मनोविज्ञान को समझ कर ही इस समस्या का हल खोजा जा सकता है। बिना सोचे-समझे उसे दोषी ठहरा कर, सहानुभूति की बजाय उपेक्षा देकर हम स्थिति को और उलझाते जा रहे हैं और नई पीढ़ी को दायित्वहीनता की ओर धकेल रहे हैं।

दरअसल जिस 'पीढ़ियों के अन्तर' को इतना महत्व दिया जाता है, वह बात मुख्य नहीं है। मुख्य बात है, सांस्कृतिक समझ के अन्तर की। यह बहुत कुछ मां के दिए संस्कारों, परिवार के आदर्श, घरेलू शिक्षा, बचपन के पालन-पोषण के तरीकों, स्वयं के व्यक्तित्व-प्रशिक्षण और सामाजिक शिक्षा-दीक्षा पर निर्भर करता है कि परस्पर निभाव की समझदारी कितनी पैदा हो? (मां की मूल भावना को यदि आघात न पहुंचाया जाए तो वह हर स्थिति में, हर आयु में, हर समय अपनी संतान के लिए बड़े से बड़ा त्याग करने के लिए प्रस्तुत मिलेगी)। दरअसल हमारे यहां नए ज्ञान-विज्ञान को अपना सांस्कृतिक आधार प्रदान करने का कोई गंभीर प्रयत्न किया ही नहीं गया। इसी से कई नई समस्याएं उपजती चली गई हैं और हम पश्चिमी प्रभाव को मात्र नकारने या स्वीकारने की बेजरूरत बहस में उलझ, उन्हें और उलझाते गए हैं।

मां की मूल भावना नारी का वह कोमल पक्ष है, जिसे सही दिशा मिले तो समाज की अनेक समस्याओं का हल मिल जाए। दोषी मां नहीं, वे स्थितियां हैं, जिनमें मां की अनजानी, अनचाही गलतियों का दुष्परिणाम भुगतना पड़ता है, संतान को, सारे समाज को और उनकी सबसे बड़ी सजा भुगतनी पड़ती है, स्वयं मां को और इस मातृत्व-भावना को। व्यापक शिक्षा और शिक्षा का सांस्कृतिक आधार ही इस स्थिति में वांछित सुधार ला सकता है।

हमारे समाज में दिनोंदिन बढ़ती हिंसा और असुरक्षा के वर्तमान माहौल में फिर से संयुक्त परिवारों की ओर बढ़ते झुकाव से भी शायद स्थिति में कुछ बदलाव आए। पश्चिमी प्रभाव से परिवारों की टूटन व सामाजिक विघटन के दुष्परिणाम देखने के बाद, आज हम फिर सभी स्तरों पर अपनी खोई अस्मिता, अपनी सांस्कृतिक 'जड़ों की तलाश' की बात करने लगे हैं, जो शुभ संकेत है। बाहरी दबाव और आंतरिक तनाव तो हमें अपनी जमीन की ओर लौटने के लिए मजबूर कर ही रहे हैं, एक 'अति' के बाद लौट की यह चक्रिक प्रक्रिया समाजशास्त्रीय नियम भी है। हां, लौट का यह चक्र घूम कर कभी अतीत की पूर्ववत स्थितियों पर नहीं आया करता, क्योंकि परंपरा एक प्रवाह है और प्रवाह की प्रक्रिया में समयानुसार परिवर्तन व संशोधन अनिवार्य होते हैं– समय की अपेक्षा स्वयं ही उन परिवर्तनों की दिशा निर्धारित करती चलती है। यही है, भविष्य के लिए आशा की एक किरण भी, जिसे पहचानना जरूरी है।

जी-302, सेक्टर - 22,
नोएडा - 201301।

आदमी

✍ सुरेश जोशी

आसमान तक फैली परेशानियां
पीड़ा का बोझ ढोते नाकाम कंधे
हाशिये में सुख
और पूरे पन्ने का दुख
यही तो नियति है
आदमी की।

झुकना फिर भी उपलब्धि है
और टूटना नाकामी
लेकिन कर्म शाश्वत है
और आदमी
तुम कर्मयोगी हो।

प्रबंधक,
जिला सहकारी संघ मर्यादित,
रामेश्वर रोड, खंडवा,
पिन 450001

राष्ट्रीय चारा एवं चारा अनुसंधान संस्थान

के. डी. द्विवेदी

राष्ट्रीय चारा और चारा अनुसंधान संस्थान (एन. एफ. जी आर. आई.) की स्थापना 1992 में इस उद्देश्य को लेकर की गई थी कि देश की बंजर भूमि को खेती योग्य बनाया जाए तथा मवेशियों के चारे में सुधार कर उसे अधिक पौष्टिक और उपयोगी बनाया जाए। इन उद्देश्यों की पूर्ति हेतु झांसी-ग्वालियर राजमार्ग पर झांसी मुख्यालय से करीब 9 किलोमीटर की दूरी पर स्थित भारत का ही नहीं, वरन् पूरे एशिया का यह एकमात्र संस्थान है जो कि स्थापना वर्ष से लगातार एक तरफ नई किस्म की घास और झाड़ियों का विकास करके देश की बंजर भूमि को वर्षा और आंधी के दौरान भूमि क्षरण से बचाता है वहीं दूसरी और वैज्ञानिक दृष्टि से पौष्टिक चारे का विकास करके देश के मवेशियों के लिए उत्तम चारे की विभिन्न किस्में उपलब्ध करता है।

देश में चारा उत्पादन करने वाली भूमि कुल कृषि योग्य भूमि का केवल 4 प्रतिशत है। केवल हरियाणा में चारा उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया गया है और वहां कृषि योग्य भूमि के 10 प्रतिशत पर चारा पैदा किया जाता है। राष्ट्रीय कृषि आयोग के एक सर्वेक्षण के अनुसार वर्ष 1971-72 में 69 लाख हेक्टेयर भूमि चारा उत्पादन हेतु प्रयोग की जाती थी और इस शताब्दी के अन्त तक 1 करोड़ 65 लाख हेक्टेयर भूमि पर चारा उत्पादन की आवश्यकता होगी। दूसरे शब्दों में 5,950 लाख टन चारे की प्रति वर्ष आवश्यकता होगी।

चरागाहों का विकास

राष्ट्रीय चारा और चारा अनुसंधान संस्थान विभिन्न प्रकार की घास की प्रजातियों के विकास में संलग्न है जिससे एक तरफ मवेशियों को प्रोटीन युक्त चारा उपलब्ध हो सके, दूसरी तरफ जमीन को बंजर होने से बचाया जा सके। इसी उद्देश्य से संस्थान द्वारा 'स्टाइलो' नामक घास का विकास किया गया है। इस घास में प्रोटीन अधिक पाया जाता है और यह वातावरण से नाइट्रोजन खींच कर जमीन को देती है जिससे दिन प्रतिदिन उनकी उर्वरा शक्ति बढ़ती है। इसी प्रकार संस्थान द्वारा दूसरी महत्वपूर्ण घास 'अंजन' का विकास किया गया है। इस घास की पैदावार अन्य घासों से ज्यादा है। संस्थान के अंतर्गत इस समय 4000 हेक्टेयर भूमि पर चरागाहों के विकास हेतु कार्य किया जा रहा है। उत्तर प्रदेश में झांसी, कानपुर, बहराइच तथा चमोली जनपद में करीब 2000 हेक्टेयर क्षेत्र में इन चरागाहों के विकास का कार्य संस्थान द्वारा किया जा रहा है।

चारे की नई प्रजातियां

संस्थान का महत्वपूर्ण कार्य विभिन्न प्रकार के चारों की गुणता को बढ़ाना तथा नई प्रजातियों का विकास करना है। इस संबंध में प्रचलित 'बरसीम' नामक चारे पर प्रयोगशाला में पर्याप्त अन्वेषण करके एक नई प्रजाति 'वरदान' का विकास किया गया जो 'बरसीम' के 45 से 70 टन प्रति हेक्टेयर उपज के मुकाबले 90 से 120 टन की उपज देती है। 'वरदान' नामक चारे की यह नई प्रजाति पूरे देश की जलवायु के लिए उपयुक्त है।

इसी प्रकार प्रचलित 'जई' नामक चारे की उपज मात्र 10 टन से 15 टन प्रति हेक्टेयर होती थी। अब इसका विकास करके संस्थान ने एक नई प्रजाति 'बुंदेल खण्ड जई' बनायी है। जिसकी उपज 50 से 60 टन प्रति हेक्टेयर पाई जाती है। संस्थान ने 'लोभिया' नामक चारे का विकास करके नई प्रजाति 'कोहनूर' बनाई और उपज को चार गुना बढ़ाने में सफलता हासिल की। संस्थान में चारे की एक नई किस्म 'रिजिका' और 'चेतक' का भी विकास किया है। 'चेतक' की विशेषता यह है कि अक्टूबर माह में एक बार बो दिये जाने के बाद, मई माह तक पांच/छह बार इसकी कटाई की जा सकती है।

वन वानिकी

देश की कुल 2,260 लाख हेक्टेयर जमीन का एक तिहाई भाग ऐसा है जिस पर कुछ पैदा नहीं होता है अर्थात बंजर है। इस बंजर भूमि को पुनः कृषि योग्य बनाया जा सके, इसके लिए आवश्यक है कि उसमें विभिन्न प्रकार के पेड़, झाड़ियां तथा घास लगाई जाए जिससे बरसात में जल बहाव को धीमा किया जा सके और परिणामस्वरूप भूमि कटाव और क्षरण को रोका जा सके।

राष्ट्रीय चारा और चारा अनुसंधान संस्थान बंजर भूमि को उर्वरा और कृषि योग्य बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहा है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु घने पेड़, झाड़ी और विभिन्न प्रकार की घास बंजर भूमि पर लगाने का कार्य किया जा रहा है। संस्थान द्वारा एक विदेशी झाड़ी 'डाइक्रो स्टेन्ज़ीस' को परिष्कृत करके 'नूतन' नाम की नई प्रजाति का विकास किया गया है जो भूमि की मिट्टी को बांध कर रखने में सक्षम है। इसी प्रकार संस्थान द्वारा विकसित 'अंजन' और 'स्टाइलो' घास की प्रजातियों को विभिन्न चरागाहों में लगाया जाता है जो एक तरफ भूमि का क्षरण नहीं होने देती हैं और दूसरी तरफ हरियाली बनाए रखकर पर्यावरण संतुलन में सहायक होती है।

बीज उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी

बंजर भूमि के विकास हेतु घास के बीज उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी भी इस संस्थान की है किन्तु सीमित साधनों की वजह से संस्थान इस समय केवल 30 से 40 टन घास के बीज ही प्रतिवर्ष उपलब्ध करा पाता है। अतः घास के बीज की मांग आपूर्ति की अपेक्षा कई गुना अधिक है। इस मांग को पूरा करने के लिए मध्य प्रदेश और कर्नाटक के किसान 'अंजन' और 'स्टाइलो' घास के बीज के उत्पादन में संलग्न हैं।

परामर्श देना

संस्थान परती भूमि विकास बोर्ड को घास के बीज और तकनीकी परामर्श उपलब्ध करता है। इसी प्रकार वन्य जीव अभ्यारण्य को भी संस्थान द्वारा सलाह दी जाती है कि किस प्रकार की घास लगाई जाए जिससे एक तरफ भूमि का कटाव रोका जा सके और दूसरी तरफ वन्य जीवों को पौष्टिक चारा सुलभता से उपलब्ध हो सके।

लवणीय भूमि का परिष्कार

देश का एक बड़ा भूभाग ऐसा है जो लवणयुक्त है, जिस प थोड़ी बहुत खेती तो होती है किन्तु जिसके बंजर हो जाने क आशंका बनी रहती है, ऐसी भूमि कृषि योग्य बनी रहे इस दिश में यह संस्थान सक्रिय है। संस्थान ने वर्तमान में उत्तर प्रदेश व कानपुर जनपद के दिलीपनगर तथा बहराइच के घाघराघाट क्षेत्र को कृषि योग्य बनाने का कार्य किया है। इस प्रकार की भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए संस्थान द्वारा घास की एक न प्रजाति 'संवरी' का विकास किया गया है, जो बड़ी उपयोगी सिद्ध हो रही है।

जल संभरण (वाटर शेड) योजना

संस्थान द्वारा चलाई जाने वाली झांसी जनपद के अंतर्गत 'तेजपुरा जल संभरण' योजना अत्यधिक सफल रही है। इस क्षेत्र में जहां पहले केवल 10 प्रतिशत भूमि पर खेती होती थी वही अब 80 प्रतिशत भूमि पर खेती हो रही है तथा जहां पहले 10 कुएं थे वहीं आज 700 कुएं हैं। संस्थान को इस योजना के सफल कार्यान्वयन हेतु राष्ट्रीय उत्पादकता पुरस्कार मिल चुका है। वर्तमान में संस्थान द्वारा झांसी जनपद के करारी - लकारा, अभवाबाई तथा मध्य प्रदेश के 'चोपड़ा' जल संभरण क्षेत्र में कार्य किया जा रहा है।

यही नहीं, संस्थान विभिन्न कृषि विश्वविद्यालयों और चारा विकास से संबंधित संस्थाओं के अधिकारियों/कर्मचारियों को सात दिनों से लेकर तीन महीने का प्रशिक्षण देने का कार्य भी करता है।

इस प्रकार संस्थान विभिन्न प्रकार के अन्वेषण करके एक तरफ पौष्टिक चारा उत्पन्न कर रहा है तथा दूसरी तरफ देश की बंजर भूमि को उपजाऊ और कृषि योग्य बनाने हेतु महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है।

साभार : पत्र सूचना कार्यालय

मरुस्थल क्षेत्र बाड़मेर की अर्थ व्यवस्था की धुरी

पी. आर. त्रिवेदी

आदिकाल से मनुष्य और पशुओं का परस्पर घनिष्ठ सम्बन्ध रहा है। पशुओं के बिना मनुष्य का जीवन अधूरा होता है। कृषि प्रधान देश भारत में आज भी पशुपालन का मुख्य उद्देश्य दुग्ध उत्पादन के साथ ही कृषि कार्य और बोझा ढोना भी है। देश में कृषि से होने वाली राष्ट्रीय आय में पशुधन का योगदान करीब 10-12 प्रतिशत तक है। देश में पशुधन का सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक महत्व भी है। अतः यह कहा जा सकता है कि हमारी कृषि प्रधान अर्थ व्यवस्था में पशुपालन का महत्वपूर्ण स्थान है। राजस्थान के ग्रामीण क्षेत्रों में निवास कर रही लगभग 80 प्रतिशत जनसंख्या का प्रमुख व्यवसाय कृषि के साथ-साथ पशुपालन ही है। मरुस्थलीय क्षेत्र में तो पशुपालन ही एकमात्र जीविकोपार्जन का साधन है।

पश्चिमी राजस्थान की अन्तर्राष्ट्रीय भारत-पाक सीमा पर बाड़मेर (मालानी) जिला पशुपालन प्रधान जिला है। थार मरुस्थल का मुख्य भाग होने के कारण यहां कृषि कार्य के लिए औसत वर्षा काफी कम होती है।

राजस्थान राज्य के पशुगणना अधिकारी के निर्देशन में हाल ही में 15वीं पशुगणना हुई। उस पंचवर्षीय पशुगणना में घोड़े और टट्टू की गत पशुगणना को छोड़कर शेष सभी पशुओं की संख्या में वृद्धि हुई है। राज्य में और बाड़मेर जिले में विभिन्न पशुओं की संख्या निम्नलिखित तालिका में दी गई है :

तालिका

राजस्थान और बाड़मेर जिले में विभिन्न पशुओं की संख्या

पशु	राजस्थान	बाड़मेर
गोवंश	1,15,95,865	3,70,699
भैसवंश	77,46,617	55,113
भेड़ें	1,21,68,178	9,40,520
बकरियां	1,50,62,589	16,21,818
घोड़े	24,630	1,470
गधे	1,92,715	42,499
ऊंट	7,30,742	1,23,743
सूअर	2,48,033	14,078

बाड़मेर जिले में ऊंटों की संख्या राज्य में सर्वाधिक है। इस प्रकार राजस्थान के कुल 4,77,73,208 पशुओं में से बाड़मेर जिले में 31,57,000 विभिन्न पशु हैं।

मालानी का गो-वंश

प्रकृति ने इस जिले को देश का सर्वश्रेष्ठ गोधन का वरदान दिया है तथा यहां पर थारपारकर तथा कांकरेज (सिंधी औ सांचोरी) नस्ल मिलती हैं। इन गायों में दूध भी अच्छा होता है तथा इनके बछड़े खेती और भार वहन में सक्षम होते हैं। ग्रामीण परिस्थितियों में गायें जंगल में चराई पर रहती हैं। इन गायों क औसतन दूध 5 लीटर प्रतिदिन होता है जबकि पर्याप्त देखभाल और उचित पशु आहार देने और बांधकर रखने पर वही गाय द से 25 लीटर प्रतिदिन दूध दे सकती है। करनाल स्थित राष्ट्री डेयरी अनुसंधान संस्थान में उन्नत नस्ल की थारपारकर गायों क सर्वाधिक 27 से 32 लीटर तक दूध प्रतिदिन देने का रिकार्ड है इसी प्रकार आम कांकरेज नस्ल की गायें औसतन 5 लीटर प्रतिदि से तीस लीटर प्रतिदिन तक दूध देती हैं। पशुपालन रिकार्ड क अनुसार सातवें दशक तक इस जिले में ऐसे अनेक पशुपालक जिनके पास 100 से 300 तक गायों के समूह पाये जाते थे। जि के सिणधरी पंचायत समिति क्षेत्र के रावल गुलाबसिंह देश क एकमात्र ऐसे गोपालक थे, जिनके पास शुद्धतम और श्रेष्ठत कांकरेज नस्ल की हजारों गायें थी। भयंकर अकालों ने भारी तादा में गोवंश को निगल लिया।

थारपारकर गोवंश देश के प्रत्येक हिस्से में सभी प्रकार क जलवायु में आसानी से रखी जा सकती हैं। बाड़मेर जिले से इ गोवंश को नस्ल संवर्द्धन के लिए सरकारी फार्मों तथा सहका दुग्ध उत्पादन समितियों के लिए महाराष्ट्र, असम, हरियाण हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, गुजरात, तमिलनाडु, मध्य प्रदेश तथ बिहार आदि राज्यों में पिछले बीस वर्षों से हजारों की तादाद खरीद कर ले जाया जा रहा है। विदेशी नस्लों में बीमारियों प्रतिरोधक शक्ति का विकास करने के लिए थारपारकर नस्ल क सांड बाड़मेर जिले से खरीदकर विदेशों में भी ले जाए जाते हैं

इस जिले में लगातार पड़ने वाले अकाल, बढ़ती आबादी

बढ़ता कृषि क्षेत्र, घटते चरागाहों के कारण पिछले तीस वर्षों में गोधन का निरन्तर ह्रास हो रहा है। छठे दशक तक जिले में जहां 12 लाख गायें थीं वहीं अब मात्र दो लाख गायें भी नहीं हैं। नस्ल सुधार कार्यक्रमों के प्रति पशुपालकों तथा सरकार की निरन्तर उपेक्षा के कारण आज पूरे जिले में शुद्ध नस्ल की गायें और सांड यदा-कदा ही देखने को मिलते हैं।

भेड़ बकरियां

बाड़मेर जिला ऊन उत्पादन में आज भी अग्रणी जिला है। जिले की मुख्य नदी लूनी के दक्षिण-पूर्व क्षेत्र में बूनी (मारवाड़ी) नस्ल की भेड़ें प्रमुखता से पाई जाती हैं तथा उत्तर-पश्चिम क्षेत्र में जैसलमेरी नस्ल की भेड़ें पाई जाती हैं। बूनी नस्ल की एक भेड़ वर्ष में औसतन 800 ग्राम तक ऊन देती है जबकि जैसलमेरी भेड़ एक से डेढ़ किलो तक ऊन देती है। इन दोनों नस्लों की भेड़ों के ऊन की गलीचा उद्योग में ही मुख्यतया खपत होती है।

जिले में बकरियों की भी दो प्रमुख नस्लें पायी जाती हैं। इनमें सीमावर्ती क्षेत्रों में सिंधी नस्ल की बकरियां तथा बलोतरा क्षेत्र में मारवाड़ी नस्ल की बकरियां पाई जाती हैं। सिंधी नस्ल की बकरी कद में बड़ी तथा दुधारू होती है जो कि प्रतिदिन औसतन दो किलोग्राम तक दूध देती है। जिले में पड़ने वाले भीषणतम अकालों में भी बकरियों को कम से कम क्षति होने के कारण पशुपालक बकरियां पालने में ज्यादा उत्सुक रहता है। जिले में बकरी पालन लाभदायक सिद्ध होने के बावजूद सरकार और पशुपालकों में इसके नस्ल सुधार में कम ही रुचि नजर आती है।

मालानी के ऊंट

बाड़मेर जिले में राज्य के सर्वाधिक संख्या में ऊंट पाये जाते हैं तथा यहां पर ऊंटों की दो नस्लें मिलती हैं। इनमें जैसलमेरी नस्ल के ऊंट अधिक मिलते हैं, वहीं सिंधी नस्ल के ऊंट काफी कम संख्या में मिलते हैं। जिले में अत्यधिक ऊंट भारत-पाक सीमा पर स्थित गांवों में पाये जाते हैं। निरन्तर पड़ने वाले अकालों की मार तथा चरागाह के अभाव में ऊंट जैसे विशाल पशु को बचा पाना बहुत मुश्किल होता है। परिणामस्वरूप यहां ऊंटों की संख्या में वृद्धि नहीं हो पा रही है। छठे दशक में जिले में 1,80,000 ऊंट थे, जबकि अब यह संख्या घटकर लगभग 1,23,000 ही रह गई है। जिले में ऊंटों के रबारी, राजपूत, जाट तथा मुसलमान अच्छे पशुपालक हैं। यहां के ऊंटों में प्रमुख रूप से सर्रा बीमारी का प्रकोप रहता है, जिस पर नियंत्रण के लिये सर्रा नियंत्रण पशु चिकित्सा इकाई कार्यरत है।

मालानी नस्ल के उम्दा घोड़े

विश्व के सर्वश्रेष्ठ घोड़ों की नस्लों में बाड़मेर जिले की दुर्लभ और उम्दा मालानी नस्ल विख्यात है। काठियावाड़ी तथा सिंधी नस्ल के घोड़ों के मेल से तैयार मालानी नस्ल के घोड़ों का एकमात्र प्राप्ति स्थान बाड़मेर जिला है। मालानी नस्ल के ये घोड़े काठियावाड़ी नस्ल की तरह देखने में खूबसूरत तथा सिन्धी (अरबी) नस्ल के घोड़ों की तरह चाल में बेमिसाल होते हैं। चाल तथा खूबसूरती में श्रेष्ठता के कारण मालानी नस्ल के घोड़ों की भारत में ही नहीं, अपितु विदेशों में भी भारी मांग है। रेसकोर्स, पोलो, खेल, पुलिस बल तथा सेना के लिए इनकी सर्वाधिक मांग रहती है तथा बिक्री भी तुरन्त हो जाती है। देश की आजादी से पूर्व इस नस्ल के संवर्धन के लिए काफी सजगता बरती जाती थी, लेकिन शनैः शनैः इस नस्ल का मिलना भी दूभर हो गया। वर्तमान में जिले की सिवाना एवं गुड़ामालानी तहसीलों के कुछ धनाढ्य लोगों के पास उपलब्ध थोड़ी संख्या की इस नस्ल के अलावा यह नस्ल दुर्लभ ही है। इस नस्ल के घोड़े की कीमत 40 हजार से 80 हजार रुपये तक रहती है।

पशुधन विकास के सुझाव

जिले में पशुधन विकास के लिए सर्वप्रथम बढ़ रही जनसंख्या पर नियंत्रण जरूरी है। इसके अलावा ग्रामीण क्षेत्रों में 'ओरण' (धार्मिक आस्था का जंगल रूपी भूमि का टुकड़ा) तथा 'गोचर' (चरागाह) के लिए भूमि आरक्षित रखी जानी चाहिए। इसके अलावा ग्रामीण क्षेत्रों में बंजर पड़ी 'ओरण' एवं 'गोचर' भूमि में दो-तीन वर्षों में एक बार हल चलाकर बारी-बारी से चराई करने का अवसर पशुपालकों को मिलना चाहिए। साथ ही भूमि की प्रकृति के अनुसार वहां सेंवण, करड़, भूरट, धामण और अन्य किस्मों की घासों को लगाकर वृक्षारोपण करने और तालाबों तटबंधों (कैंचमेंट एरिया) को भी अतिक्रमणों से सुरक्षित रखकर पशुधन का विकास किया जा सकता है। गांवों के आसपास स्थित पहाड़ों और मगरों (चट्टानी भूमि) पर तारबंदी कर वहां भेड़ बकरियों के लिये चारा पैदा किया जा सकता है।

इन प्रयासों के अलावा 'नस्ल सुधार कार्यक्रम' भी पशुधन विकास के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण है। पशुपालन विभाग द्वारा प्रत्येक ग्राम पंचायत मुख्यालय पर एक शुद्ध नस्ल का सांड उपलब्ध करवाया जाना चाहिए। पंचायत में सांड के खर्चे का प्रावधान हो तथा सभी नकारा बछड़ों का बधियाकरण करने का अभियान भी तेजी से चलाया जाना चाहिए।

(शेष पृष्ठ 31 पर)

पंचायती राज और स्वैच्छिक संगठनों की भूमिका

✍अक्षेम

प्रस्तावना

73वें संविधान संशोधन को ध्यान में रखकर सभी राज्यों ने 24 अप्रैल 1994 तक अपने पंचायती राज अधिनियमों में संशोधन कर लिये थे। कुछेक राज्यों को छोड़कर सभी में पंचायतों के चुनाव भी हो चुके हैं अर्थात् नयी पंचायती राज प्रणाली को लागू कर दिया है।

अब प्रश्न उठता है कि पंचायती राज प्रणाली को कैसे सशक्त बनाया जाए ताकि ये संस्थायें लोगों की आशाओं के अनुरूप खरी उतरें। इसके लिए केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार, नौकरशाही व स्वयं पंचायत नेताओं की अपनी-अपनी भूमिका है। लेकिन इस तरफ स्वैच्छिक संस्थाओं की क्या भूमिका हो सकती है इसी की इस लेख में चर्चा की गई है। यहां पर स्वैच्छिक संस्थाओं से अर्थ उन संस्थाओं से है जिनकी समाज में साख है तथा देश के चहुंमुखी विकास में उनका उल्लेखनीय योगदान है। आइये देखते हैं किस प्रकार स्वैच्छिक संस्थायें पंचायतों को मजबूत बनाने में योगदान कर सकती हैं।

चुनाव प्रक्रिया में योगदान

स्वैच्छिक संस्थायें चुनाव से पहले, चुनाव के दौरान और चुनाव के बाद बड़ी अहम भूमिका अदा कर सकती हैं। चुनाव से पहले ये संस्थायें मतदाताओं को उनके वोट के महत्व के बारे में शिक्षित कर, चुनाव संबंधी नियम कानूनों की लोगों को जानकारी देकर तथा विभिन्न राजनैतिक दल जो चुनाव में भाग ले रहें हैं उनके घोषणा पत्रों, नीतियों और दर्शन आदि का विश्लेषण करके लोगों को अपनी राय बनाने में महत्वपूर्ण सहायता कर सकती हैं।

चुनाव के दौरान स्वैच्छिक संस्थाएं स्वतंत्र और निष्पक्ष मतदान के लिए समाज के विभिन्न समुदायों और जातियों के बीच आपसी सद्भाव बनाए रखने और गांव के सम्मानित लोगों में से पर्यवेक्षक दल बनाकर चुनाव के दौरान होने वाली धांधलियों पर कड़ी नजर रखने का वातावरण बना सकती हैं। इसके अलावा शत प्रतिशत मतदान कराने में मतदाताओं को प्रोत्साहित कर सकती हैं।

चुनाव के बाद ग्राम सभा के सदस्यों व पंचायतों के सदस्यों और अध्यक्षों को अधिकारों और कर्तव्यों के बारे में जानकारी दे सकती हैं।

सूचनाओं की जानकारी

सूचनाओं की जानकारी होना आज के युग में बहुत महत्वपूर्ण है। गांव की बात तो दूर, शहरों में भी लोगों को विभिन्न विकास योजनाओं और कार्यक्रमों की जानकारी नहीं होती।

अतः स्वैच्छिक संस्थाओं का यह दायित्व है कि वे केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकारों द्वारा चलाए गए विभिन्न ग्राम्य विकास कार्यक्रमों की जानकारी पंचायतों और लोगों को दें। विकास कार्यों को पूरा करने के लिए वित्त के स्रोतों आदि की जानकारी भी स्वैच्छिक संस्थायें पंचायतों को दे सकती हैं। इसके अलावा ये संस्थायें पंचायतों को ग्रामीण विकास के आधारभूत आंकड़ों की जानकारी देकर पंचायतों को उनकी समस्याओं से अवगत करा सकती हैं।

योजनाओं को बनाना व उनका क्रियान्वयन

नई व्यवस्था के अनुसार ग्राम पंचायत, पंचायत समिति, जिला परिषद् अपने-अपने स्तर पर अपने कार्य क्षेत्र की योजनाएं बनाएंगी। इसके अलावा जिला स्तर पर ग्रामीण व नगरीय दोनों क्षेत्रों को मिलाकर जिला योजना समिति सम्पूर्ण जिले की योजना बनाएगी। यह पंचायतों पर बहुत बड़ी जिम्मेदारी है।

अतः योजना के विभिन्न तत्वों जैसे किसी योजना के उद्देश्यों को और उन्हें लागू करने के ढंग तथा उसके लाभार्थियों के बारे में जानकारी पंचायतों को होनी आवश्यक है। स्वैच्छिक संस्थाएं इस कार्य में अपने अनुभव से पंचायतों को योजना बनाने में बड़ी मदद कर सकती हैं। वे पंचायतों को वार्षिक, पंचवर्षीय व दीर्घकालीन माडल योजनायें बना कर दे सकती हैं।

यही नहीं शैक्षिक संस्थायें स्नातक व ऊपर के स्तर के पाठयक्रमों में ग्राम्य योजना, पंचायत समिति योजना व जिला योजना बनाने आदि को शामिल करके इस तरह से प्राप्त जानकारी को पंचायतों को उपलब्ध करा सकती हैं। यहां पर गांधी ग्राम

ग्रामीण विश्वविद्यालय का उदाहरण देना तर्कसंगत प्रतीत होता है क्योंकि उसने अपने आस-पास के गांवों में ग्रामीण योजना समिति बनाकर महत्वपूर्ण योगदान दिया है। ऐसा करने से रोजगार व साक्षरता में शत प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हुई। जनसंख्या में बढ़ोत्तरी का असर नहीं के बराबर हो गया तथा महिला कर्मचारियों की वार्षिक आमदनी 21,000/- रुपये से लेकर 54,000/- रुपये तक बढ़ गयी।

इसके अतिरिक्त जिला स्तर पर जिला योजना समिति में एक चौथाई सदस्य चुने हुए नहीं होंगे यानि मनोनीत किए जाएंगे। अतः स्वैच्छिक संस्थाएं इसमें भागीदार बनकर अहम भूमिका अदा कर सकती हैं।

समिति प्रणाली को कारगर बनाने में योगदान

सभी राज्यों के पंचायती राज अधिनियमों में तीनों स्तरों (ग्राम पंचायत, पंचायत समिति व जिला पंचायत) पर कार्यों को उचित तरह से निपटाने के लिए, शिक्षा समिति, सामाजिक न्याय समिति, वित्त समिति, योजना समिति व महिला व बाल विकास समिति आदि का प्रावधान है। स्वैच्छिक संस्थाएं जो ग्राम, ब्लाक व जिला स्तर पर कार्य कर रही हैं इन समितियों में भागीदार होकर पंचायतों को सलाह मशविरा प्रदान कर सकती हैं। यहां महत्वपूर्ण बात यह है कि स्वैच्छिक संस्थाओं को इस तरह की भागीदारी में मतदान का अधिकार दिया जाना आवश्यक नहीं है।

प्रशिक्षण

विदित है पहली बार पंचायती राज प्रणाली में महिलाओं व समाज के अन्य कमजोर वर्गों को भागीदार होने का अवसर मिला है। इस वर्ग का बहुत बड़ा भाग अशिक्षित और साधनहीन है। उदाहरण के तौर पर आठवीं पंचवर्षीय योजना के अनुसार गांवों के गरीब परिवारों में से 30 प्रतिशत परिवारों की मुखिया महिलाएं हैं जिनके पास किसी भी तरह के साधन, सम्पत्ति नहीं है। इस तरह की स्थिति में स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका और भी बढ़ जाती है कि वे इस वर्ग को विकेन्द्रीकृत शासन व विकास की आधारभूत बातों का ज्ञान कराएं। स्वैच्छिक संस्थाएं बड़े सरल तरीके से विकास में निर्णय की प्रक्रिया, पंचायतों के वित्त संबंधी और अन्य दायित्वों आदि पर प्रशिक्षण माडयूल बनाएं ताकि वे लोग सम्पूर्ण विकेन्द्रीकरण को समझ कर सार्थक भूमिका अदा कर सके।

मूल्यांकन

पंचायती राज व्यवस्था का मूल्यांकन करना भी आवश्यक है। विभिन्न राज्यों में पंचायत चुनावों के बाद नई प्रणाली लागू हो गई है। स्वैच्छिक संस्थाओं का दायित्व है कि वे मूल्यांकन करें कि किस हद तक राज्यों ने पंचायतों के कार्य व उनसे संबंधित वित्तीय साधनों का विकेन्द्रीकरण किया है। यदि विकेन्द्रीकरण वास्तव में नहीं हुआ है तो जानकारी अभियान चलाकर और प्रशिक्षण कार्यक्रम द्वारा ग्राम सभा के और पंचायतों के सदस्यों को इस बारे में जानकारी दी जाए तथा समय-समय पर या एक दौर समाप्त होने पर पंचायतों को कार्य, वित्तीय साधनों आदि का मूल्यांकन करके बतायें की कहां तक विकेन्द्रीकृत शासन व विकास सफल हुआ है।

पंचायतों को प्रेरित करने में सहयोग

महिलाओं व समाज के कमजोर वर्गों को आरक्षण दे देना कोई जादू की छड़ी नहीं है जिससे कि उनकी व ग्रामीण समाज की समस्याओं का समाधान हो जायेगा। वास्तव में इनकी समस्याओं का समाधान तब तक नहीं होगा जब तक ये लोग अपने अधिकारों के लिये तथा पंचायतों को स्वायत्त संस्था का रूप दिलाने के लिये प्रेरित नहीं होंगे। अब तक का अनुभव यह रहा है कि नीचे स्तर से लोगों में अधिकार प्राप्त करने के प्रति उत्साह नहीं है। प्रो. सी. एच. हनुमन्तराव का कहना सही है कि छिटपुट प्रयासों को छोड़कर नीचे के अधिकांश लोगों ने इस ओर कोई उत्साह नहीं दिखाया कि सरकार विकेन्द्रीकरण के लिये मजबूर हो।

अतः स्वैच्छिक संस्थाओं का यह दायित्व है कि वे पंचायतों के नेताओं को अधिकारों और कर्तव्यों की जानकारी देकर उन्हें आन्दोलित करें ताकि उनमें सत्ता में हिस्सेदारी प्राप्त करने की इच्छा उमड़े।

निष्कर्ष

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि स्वैच्छिक संस्थाओं को पंचायतों को सशक्त बनाने में मित्र, सहयोगी और मार्गदर्शक के रूप में कार्य करना पड़ेगा। पंचायतों को नई प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न जिम्मेदारियां सौंपी गयी हैं। उन जिम्मेदारियों को निभाने के लिए पर्याप्त साधन हैं या नहीं इन सबका अध्ययन करके जानकारी पंचायतों को देने में स्वैच्छिक संस्थाएं अहम भूमिका अदा कर सकती हैं। ये संस्थाएं अध्ययन करें कि कहीं पंचायती राज केवल 'राज' बनकर तो नहीं रह गया। यदि पंचायतों को उचित साधन उपलब्ध नहीं कराये गये या पंचायतों ने स्वयं साधन जुटाने का कार्य नहीं किया तो हो सकता है राज्य सरकारें व राज्य स्तर के नेता यह कहें कि पंचायतों को इतने अधिकार दिये थे लेकिन वे उन्हें नहीं निबाह पायीं, इसलिये क्यों न उनसे ये अधिकार वापिस ले लिये जायें। इसलिए स्वैच्छिक संस्थाएं पंचायतों के नेताओं को भली प्रकार बतायें, समझायें की वे कैसे सशक्त बन सकते हैं।

1661, लक्ष्मीबाई नगर,
नई दिल्ली-110023

गांवों में बिजली

✍ सुभाष चन्द्र "सत्य"

यह कथन बहुत घिसा पिटा लगने के बावजूद आज भी सत्य है कि वास्तविक भारत गांवों में बसता है। शहरीकरण, औद्योगीकरण तथा रोजगार के अवसरों जैसे पहलुओं के कारण गांवों की आबादी का शहरों में पलायन का सिलसिला जारी रहने के बावजूद देश की 70 प्रतिशत से अधिक जनता आज भी गांवों में रहती है। यह भी सच है कि आजादी के बाद देश की योजनाओं में ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दिये जाने पर भी गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बिताने वाली अधिकतर आबादी गांवों में ही रह रही है। इस स्थिति को ध्यान में रखते हुए आठवीं योजना विशेषकर पिछले दो वर्षों में ग्रामीण विकास के लिए निर्धारित धनराशि में काफी वृद्धि की गई है। 1992-93 के बजट में ग्रामीण विकास के लिए 3100 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था। 1994-95 में यानी दो वर्ष बाद उसे बढ़ाकर 7010 करोड़ रुपये कर दिया गया। अब इस वर्ष के बजट में ग्रामीण विकास की राशि में 690 करोड़ रुपये की वृद्धि कर इसे 7700 करोड़ रुपये कर दिया गया है। इसके लिए रोजगार, बुनियादी सुविधाओं के विकास, शिक्षा तथा जन कल्याण की कई नई योजनाएं चलाई गई हैं। 1991 में आर्थिक सुधारों का दौर शुरू होने पर कई क्षेत्रों में यह आरोप लगाया गया कि अब गांवों की तरफ कम ध्यान दिया जाएगा, किन्तु 1994-95 तथा 1995-96 के वार्षिक बजट में ग्रामीण विकास के लिए किए गए प्रावधान इन आरोपों को गलत साबित करते हैं।

विकास और बिजली

यों तो ऊर्जा मनुष्य की बुनियादी आवश्यकता है परन्तु आधुनिक युग में आर्थिक विकास तथा लोगों के जीवन-स्तर में सुधार लाने के लिए ऊर्जा ने और अधिक महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त कर लिया है। सच तो यह है कि किसी देश में प्रति व्यक्ति ऊर्जा की खपत वहां की समृद्धि और प्रगति का मापदण्ड माना जाता है। बिजली ऊर्जा का सबसे सशक्त और महत्वपूर्ण साधन है। आज के युग में बिजली के बिना आर्थिक एवं सामाजिक प्रगति की कल्पना करना भी असंभव है। भारत जैसे विशाल भू-भाग तथा बड़ी जनसंख्या वाले देश में तो बिजली की खपत और उत्पादन बढ़ाना बहुत बड़ी चुनौती है। हमारे योजनाकारों ने योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ होने के समय से ही इस चुनौती को स्वीकार किया और बिजली उत्पादन की छोटी बड़ी असंख्य परियोजनाएं चलाकर बिजली उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि की है। हालांकि बिजली अनेक स्रोतों से तैयार की जा सकती है परन्तु भारत में मुख्यतया कोयले या गैस से और पानी से बिजली तैयार की जाती है। बिजली का कुछ हिस्सा परमाणु बिजली घरों से प्राप्त किया जाता है। सन् 1950 में योजना प्रक्रिया शुरू होने के समय देश में बिजली उत्पादन की कुल संस्थापित क्षमता केवल 1710 मेगावाट थी जो 1991-92 में लगभग 70,000 मेगावाट हो गई और 1996-97 में इसके लगभग एक लाख मेगावाट तक पहुंच जाने का अनुमान है। इसमें करीब 70 प्रतिशत ताप बिजली और लगभग 28 प्रतिशत पन बिजली होगी। परन्तु बिजली के उत्पादन में इस वृद्धि के बावजूद प्रति व्यक्ति खपत के मामले में हमारा देश न केवल विकसित देशों से बल्कि अनेक विकासशील देशों से भी काफी पीछे है। अमरीका में यह खपत 9,348 किलोवाट, जापान में 4008, दक्षिण कोरिया में 2,206 किलोवाट तथा भारत में केवल 223 किलोवाट है।

ग्रामीण विकास और बिजली

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में बिजली का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। सिंचाई तथा खेती-बाड़ी के अन्य कार्यों में बिजली का उपयोग लगातार बढ़ रहा है। 1990-91 में कृषि में ऊर्जा के सभी साधनों में बिजली का हिस्सा 42.9 प्रतिशत था, जो 1996-97 तक बढ़कर 48.9 प्रतिशत हो जाने का अनुमान है। गांवों में कृषि कार्यों के अलावा कृषि-आधारित उद्योगों तथा अन्य उद्योगों के लिए भी बिजली की आवश्यकता होती है। इसके अलावा सड़कों और घरों में रोशनी करने, रेडियो, टेलीविजन जैसे मनोरंजन और सूचना के माध्यमों तथा पढ़ाई-लिखाई के लिए भी बिजली इस्तेमाल की जाती है। इस प्रकार गांवों में आर्थिक विकास और जीवन-स्तर में सुधार इन दोनों उद्देश्यों की दृष्टि से बिजली का महत्व है। अब तक का अनुभव बताता है कि जिन राज्यों में गांवों में बिजली पहुंचाने में जितनी प्रगति हुई है, उसी अनुपात में वहां आर्थिक विकास में गति आई है। बिजली की पहुंच से गांवों के सामाजिक जीवन में उल्लेखनीय परिवर्तन देखने का मिला है।

ग्रामीण विद्युतीकरण

गांवों की प्रगति में बिजली के महत्व को देखते हुए सरकार ने ग्रामीण विकास के लिए 1969 में अलग से एक निगम की स्थापना की ताकि गांवों में बिजली की व्यवस्था पर समुचित ढंग से ध्यान दिया जा सके। ग्रामीण विद्युतीकरण निगम (आर. ई. सी.) ने 25 वर्षों के अपने कार्यकाल में अब तक देश के 85 प्रतिशत गांवों का विद्युतीकरण करने में सफलता प्राप्त की है। गांवों में सिंचाई सुविधाएं बढ़ाने के लिए पम्प सेटों की 73 प्रतिशत क्षमता का उपयोग होने लगा है। सन् 1969 में केवल 13 प्रतिशत गांवों में बिजली उपलब्ध थी जब कि 1984 में 60 प्रतिशत तथा 1994 में 85 प्रतिशत गांवों में बिजली पहुंचा दी गई। आठवीं पंचवर्षीय योजना में 50,000 गांवों में बिजली देने का लक्ष्य रखा गया जिनमें दस हजार गांव दूर दराज के इलाकों के हैं। इन गांवों में ऊर्जा के गैर परंपरागत साधनों से बिजली दी जानी है। मार्च 1995 तक के आंकड़ों के अनुसार अभी 84,750 गांवों म्ं बिजली पहुंचाना बाकी है। इनमें से अधिकतर गांव दूर-दराज तथा दुर्गम क्षेत्रों में हैं।

निगम के योजनाबद्ध प्रयासों के फलस्वरूप 13 राज्यों को पूर्ण विद्युतीकृत घोषित किया जा चुका है। सन् 2010 तक देश के सभी गांवों में बिजली पहुंचाने का लक्ष्य है। निगम विभिन्न राज्यों को वित्तीय सहायता उपलब्ध कराकर ग्रामीण विद्युतीकरण के अभियान को आगे बढ़ाता है। पिछले वर्ष यानी अपनी स्थापना के रजत जयंती वर्ष में निगम ने 1000 करोड़ रुपये से अधिक वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई जबकि लक्ष्य 710 करोड़ रुपये की राशि वितरित करने का था। इस प्रकार निगम ने लक्ष्य से लगभग 45 प्रतिशत ज्यादा धन उपलब्ध कराया। इस वर्ष 3,350 गांवों में बिजली पहुंचाई गई और 3090 लाख पम्पसेटों को बिजली के कनेक्शन दिए गए। निगम ने अपने कुटीर ज्योति कार्यक्रम के अंतर्गत गरीब ग्रामवासियों के 25,000 घरों में एक बत्ती के कनेक्शन दिए।

ग्रामीण बिजली सहकारी समितियां

गांवों में बिजली पहुंचाने के काम को विकेन्द्रित करने तथा इसमें स्थानीय लोगों को सहभागी बनाने के उद्देश्य से ग्रामीण बिजली सहकारी समितियों को वित्तीय सहायता दी जाती है। इस योजना से ग्रामीण विद्युतीकरण की गति को तेज करने में काफी मदद मिली है। इस कार्यक्रम में बिजली की लाइनें बिछाने तथा अन्य संबंधित गतिविधियों में सहकारी समितियों के सदस्य स्वयं काम करते हैं और बिजली वितरण की जिम्मेदारी संभालते हैं, जिससे लागत में कमी आती है। ये समितियां गोष्ठियां तथा प्रशिक्षण कार्यक्रम आयोजित करके सदस्यों को बिजली के उचित इस्तेमाल, बचत तथा सहकारिता के सिद्धांतों की शिक्षा देती हैं। लोगों की अपनी संस्थाएं होने के कारण इनके प्रयासों से समाज के कमजोर वर्गों की आवश्यकताओं की ओर विशेष ध्यान दिया जा रहा है। मार्च 1994 तक विभिन्न राज्यों में चल रही 38 ग्रामीण विद्युतीकरण सहकारी समितियों ने कुल 4133 गांवों तथा 1687 छोटी बस्तियों में बिजली पहुंचाई। इसके अलावा इन समितियों ने दो लाख पम्प सेटों, 17,000 उद्योगों और 7 लाख घरों में बिजली पहुंचाई। सहकारी समितियों के गठन का सबसे बड़ा लाभ यह है कि बिजली की बरबादी में काफी कमी हुई हैं क्योंकि वे उपभोक्ताओं की आवश्यकताओं के अनुरूप बिजली देने की योजनाएं बनाती हैं। ग्रामीण विद्युतीकरण निगम की अन्य योजनाओं की तुलना में सहकारी समितियों की योजना कहीं बेहतर सिद्ध हुई है। सहकारी समितियों को निगम की ओर से बिजली परियोजना की कुल लागत की 60-70 प्रतिशत तक राशि ऋण के रूप में दी जाती है। इसके अलावा राज्य सरकारों से सब्सिडी भी मिलती है। इस योजना की सफलता का अनुमान इसी तथ्य से लगाया जा सकता है कि 38 समितियों में से चार समितियां, 20 वर्ष से अधिक समय से, 18 समितियां 18 से 20 वर्ष से और 15 समितियां 5-10 वर्ष से निरंतर काम कर रही हैं। इस प्रकार की समितियां इस समय 11 राज्यों में चल रही है, जिनका ब्यौरा इस प्रकार है।

राज्य	ग्रामीण बिजली सहकारी समितियां
मध्य प्रदेश	17
आंध्र प्रदेश	9
तमिलनाडु	3
पश्चिम बंगाल	2
बिहार	1
जम्मू कश्मीर	1
कर्नाटक	1
महाराष्ट्र	1
उड़ीसा	1
राजस्थान	1
उत्तर प्रदेश	1

(शेष पृष्ठ 31 पर)

कहानी

जादू

✍ सुधीर ओरवदे

नन्हा राजू आज फिर मचल रहा था। पापा जादू से मिठाई ला दो न! बनवारी ने पहले तो समझाने का प्रयत्न किया।; "बेटे जादू से मिठाई नहीं आती।" पर राजू कुछ भी समझने को तैयार नहीं था। "अभी दो दिन पहले ही तो पापा ने जादू से मिठाई ला कर दी थी। जब पहले जादू से मिठाई आ सकती थी तो आज क्यों नही आ सकती। पापा ही बुरे हैं। उन्हें अकेले ही जादू आता है न इसीलिए अकड़ते हैं। जब मैं जादू सीख जाऊंगा तब खूब मिठाइयां लाया करूंगा। मम्मी को दूंगा। वह बहुत अच्छी है। बेचारी को जादू नहीं आता तो क्या हुआ। घर में बहुत अच्छी-अच्छी चीजें बना कर खिलाती है और एक ये पापा हैं, न पैसा लगता है न कुछ। केवल आंखें बंद करके बैठ जाओ तो जादू के जोर से हाथों में मिठाई आ जाती है।" लेकिन केवल कुछ दिन ही ऐसा जादू पापा ने दिखाया। कभी मिठाई, कभी टाफी, कभी कुछ। लेकिन आज राजू ने फिर मिठाई की जिद की तो मम्मी-पापा दोनों हंसने लगे थे। राजू को उनकी हंसी बड़ी विचित्र लगी थी। मम्मी ने पापा से कहा था "लो अब तो रोज रोज जादू की फरमाइश हुआ करेगी। कैसे करोगे इसकी मांगे पूरी?" बनवारी ने तब राजू को समझाना शुरू किया था। "बेटे ये जादू वादू तो सब बेकार की बातें हैं। ऐसे जादू से मिठाई आने लगे तो लोग काम धंधा क्यों करेंगे सभी लोग जादू से खाना नहीं मंगवा लिया करेंगे।" पर नन्हें राजू को ये बड़ी-बड़ी बातें समझ में नहीं आयीं। उसे तो पता था कि पापा जादू जानते हैं उस दिन खुद उसने अपनी आंखों से देखा था। अतः बनवारी के पीछे वह रोज पड़ा रहता कि पापा जादू से ये लादो न। वो लादो न। और आज वह हो गया जिसकी आशंका वासंती को कई दिनों से थी। उनकी बेबसी, गरीबी और असमर्थता की मार अंततः नन्हें राजू को पड़ गयी। कितना रोया था आज राजू। "पापा गंदे हैं, मैं उनसे बात नहीं करूंगा, कभी नहीं करूंगा" हिचकियों के बीच उसके यह अस्पष्ट शब्द अभी भी इस बात की गवाही दे रहे थे कि उसे विश्वास है कि पापा को जादू आता है पर पता नहीं वह जादू से मिठाई क्यों नहीं ला रहे। राजू हिचकियां लेते लेते ही सो गया था। घर का वातावरण काफी बोझिल हो गया था। बनवारी और वासंती चुपचाप एक दूसरे को निहार रहे थे। जैसे एक दूसरे को टटोल रहे हों कि कहीं वही विचार तुम्हारे मन में तो नहीं घूम रहा जो विचार मेरे मन में घूम रहा है। वासंती को सब याद आ रहा था। कितना समझाया था उसने बनवारी को "ये बड़े लोगों के खेल हैं, उन्हीं को शोभा देते हैं। दुनिया में हर बात का ढोंग किया जा सकता पर पैसे का ढोंग नहीं किया जा सकता। अतः समझने का प्रयास करो आज तुमने मिठाई खरीदी है जो तुम जादू से तैयार करके राजू को देना चाहते हो ऐन वैसे ही जैसे मालिक अपने बच्चे को जादू से चाकलेट, मिठाई, खिलौने इत्यादि ला कर देते हैं उनके पास पैसा है उनका जादू रोज चल सकता है पर तुम...तुम कब तक यह नाटक कर सकोगे। राजू के प्रति तुम्हारा लगाव, अपनापन एवं प्यार उचित है उसे भौतिकता का जामा मत पहनाओ। वह तो वैसे ही तुम्हारे आने की प्रतीक्षा में दरवाजे में टकटकी लगाए बैठा रहता है कि कब तुम आओ और वह तुम्हारी सवारी करे। वह तो पूर्णतः संतुष्ट है, प्रसन्न है, उसकी यही वास्तविक खुशी है। इसे बनावटी जादू के खेल से उससे मत छीनो।" पर बनवारी तो उस दिन अपने आप को मालिक और राजू को मिस्सी बाबा समझ कर जादू का खेल खेलने वाला था जो वह हमेशा मालिक की कोठी में शाम को देखा करता था।"

बनवारी, सेठ जमनादास के यहां ड्राइवर की नौकरी करता है। जब भी मालिक मिल से शाम को वापस घर आते तो अपने बच्चे मिस्सी बाबा के लिये कुछ न कुछ जरूर खरीदते। फिर घर आने पर शुरू होता पिता पुत्र का पसंदीदा खेल। बच्चा पूछता, पापा आज जादू से क्या लायेंगे? मालिक कहते चलो आज हम जादू से आपके लिये लाते हैं डमरू वाला खिलौना और फिर शुरू होता वह जादू का खेल। बनवारी को इस खेल में अतीव आनन्द आता। वह हरदम उन क्षणों में स्वयं अपनी कल्पना किया करता। वह हमेशा सोचता महंगे-महंगे खिलौने न सही चाकलेट, मिठाई का जादू तो मैं भी राजू को दिखा सकता हूं। एक दिन यह खेल उसने भी खेला। कितना खुश हुआ राजू उस दिन। बार-बार उछल- छल कर वासंती को मिठाई का डिब्बा दिखा रहा था और कहता जा रहा था मम्मी-मम्मी, पापा को जादू आता है। फिर तो तकरीबन रोज ही इस जादू के खेल को खेला जाता। कभी टाफी तो कभी मिठाई। पर पैसे का यह खेल इस गरीब के घर में कितने

(शेष पृष्ठ 35 पर)

ग्रामीण अर्थव्यवस्था की धुरी : बैलगाड़ी

✍डा० प्रेमचन्द्र गोस्वामी

पाषाण युग से चलते हुए आदमी ने आज यद्यपि परमाणु युग में कदम रख दिया है, शहरी हलचल के बीच आज हर ओर छोटे बड़े वाहनों की घरघराती आवाज सुनाई देने लगी है, आज की तेज रफ्तार जिन्दगी की भांति वाहन भी कुछ ही पलों में लम्बी दूरियां नाप रहे हैं, किन्तु वाहनों की यह आधुनिक व्यवस्था क्या पीढ़ियों से चली आ रही पुरातन बैलगाड़ी को मात दे सकी है? शायद नहीं और शायद हां भी। हां इसलिए कि आधुनिक वाहन मात्र शहरों में ही बैलगाड़ी के महंगे विकल्प बन सके हैं, वह भी इसलिए कि यहां कोलतार की लम्बी और पक्की सड़कें बन चुकी हैं, किन्तु ग्रामीण क्षेत्रों में जहां टूटी-फूटी कच्ची सड़कें भी नसीब से मिलती हैं, जहां के ऊबड़-खाबड़ रास्ते और खेतों की मुण्डेरों के पास चले जा रहे छोटे-बड़े गलियारे तय करना भारत के कोई 80 प्रतिशत लोगों की नियति है•वहां आज भी बैलगाड़ी का परम्परागत महत्व बना हुआ है। यद्यपि ग्रामीण क्षेत्रों में कुछ सम्पन्न लोगों के पास ट्रैक्टर आ गए हैं, किन्तु वे भी वहां बैलगाड़ी का विकल्प नहीं बन पाए हैं।

पारम्परिक कृषि की धुरी

जब से आदमी ने खेती या कृषि कार्य शुरू किया और जब से उसे पहिये के महत्व का पता चला तभी से बैलगाड़ी हमारी पारम्परिक कृषि की धुरी बनी हुई है। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि वह हमारी सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था की धुरी बनी हुई है। वस्तुतः हमारे देश की सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार कृषि ही है। बैलगाड़ी युग-युगान्तर से भारतीय कृषक के जीवम का अभिन्न, अपरिहार्य अंग रही है।

किसान को चाहे खेती करनी हो, फसल को इधर से उधर ले जाना हो, गांव से मण्डी जाना हो, ब्याह बारात हो या मेला बाजरिया, हाट बाजार हो अथवा ग्राम पंचायत, बैलगाड़ी के सहारे ही वह अपने सारे काम सम्पन्न करता है। बैलगाड़ी के अभाव में भारतीय किसान अपनी खेती की कल्पना नहीं कर सकता। हमारा सम्पूर्ण ग्रामीण अर्थशास्त्र बैलगाड़ी के पहियों पर टिका है।

हर कसौटी पर खरी बैलगाड़ी : बैलगाड़ी वर्षों से ग्राम्य जीवन की हर कसौटी पर खरी उतरी है। समय का चक्र न तो उसकी गति को अवरुद्ध कर सका और न ही उसकी महत्ता को कम कर सका है वह आज भी गांव की झरखेरी से घिरे तंग गलियारों और नगर व कस्बों की पक्की खुली सड़कों पर बेधड़क चल रही है।

कहा जाता है कि बैलगाड़ी का जन्म सिन्धु घाटी की सभ्यता के समय हुआ। तब से अब तक बैलगाड़ी के रूप-स्वरूप में अनेक बार मामूली से परिवर्तन हुए किन्तु उसका मूल स्वरूप वही बना रहा। लकड़ी के दो पहिये, बैलों के सिर पर रखने का लम्बा मचान और सामान रखने का छोटा अथवा बड़ा पाटा।

सन् 1950 में बैलगाड़ी में पहली बार हवादार टायर वाले पहियों का प्रचलन हुआ। ये पहिये शहरों की सड़कों के लिए उचित थे पर गांवों में तो कोई 96 प्रतिशत बैलगाड़ियों का वही परम्परागत रूप ही रहा। बैलगाड़ी का इतिहास कोई 2000 वर्ष से अधिक पुराना है। किन्तु इस अवधि में अनेक प्रयासों के बावजूद बैलगाड़ी का ऐसा कोई डिजाइन या रूप विकसित नहीं हो सका जो ग्रामीण क्षेत्र की जमीन, जलवायु, सड़कों तथा आर्थिक व सामाजिक जरूरतों को ठीक तरह से पूरा कर सकता हो।

ट्रक, टेम्पो, हाथ के ठेले आज शहरों में भले ही बैलगाड़ी के विकल्प बन चुके हों किन्तु क्या हम अपने देश के पांच लाख गांवों के लिए बैलगाड़ी का कोई विकल्प ढूंढ सके हैं? ग्रामीण क्षेत्रों में जहां परिवहन तथा यातायात के लिए बैलगाड़ी एक अपरिहार्य साधन बन चुकी है, उसका महत्व आगामी अनेक वर्षों तक कम नहीं किया जा सकता।

हमें इस तथ्य को स्वीकार करना पड़ेगा कि ग्राम्य क्षेत्रों में चल रही कोई 35 लाख बैलगाड़ियां जिन पर कोई 60 अरब रुपयों की पूंजी लगी हुई है तथा जिन पर कोई सवा दो करोड़ लोगों का रोजगार निर्भर कर रहा है, वह मूलतः हमारे ग्रामीण उद्योग का एक जरूरी हिस्सा है। वह कृषक का घर द्वार भी है, उसका भंडार, उसका रसोई घर और उसका शयन कक्ष भी बैलगाड़ी में ही समाया हुआ है।

यह भी तथ्य जानने योग्य है कि हमारे देश का किसान अर्थशास्त्रियों की भांति बैलगाड़ी का पूंजी विनियोजन, लागत व

लाभ के सन्दर्भ से जोड़कर नहीं देखता। घर और खेत के बाद उसके लिए अगर कोई अन्य महत्वपूर्ण वस्तु है तो वह है बैलगाड़ी। जिस किसान के पास बैल और बैलगाड़ी नहीं उसकी खेती पंगु है, लंगड़ी है। ये दोनों उसकी जिन्दगी के हिस्से हैं। इनके सहारे वह अपनी•उजड़ी खेती और गृहस्थी दोनों को संवार सकता है।

खामियां और सुधार के प्रयास

हमारी परम्परागत बैलगाड़ी में निश्चय ही कुछ खामियां हैं। मसलन इस गाड़ी से बैलों के कंधों पर अधिक बोझ पड़ता है। इसकी उम्र कोई 10-12 साल ही है। इस पर एक खास सीमा तक बोझ लादा जा सकता है, अतः उससे अपेक्षाकृत कम कमाई होती है।

हमारे देश में बैलगाड़ी के सुधार व बेहतर उपयोग के लिए व्यक्तिगत तथा संस्थागत दोनों स्तरों पर प्रयास हुए हैं। राष्ट्रीय डिजाइन पीठ (अहमदाबाद), भारतीय प्रबन्ध पीठ (बंगलौर), अभियांत्रिकी महाविद्यालय कोयम्बतूर आदि संस्थाओं ने बैलगाड़ी के अनेक नए प्रारूप तैयार किये हैं किन्तु उनमें से कोई भी अभी चलन में नहीं आ पाया है। आज यदि हम ग्राम्य क्षेत्रों का सड़कीकरण करके वहां मोटर गाडियां भी चलाना चाहें तो वह भी महंगा और घाटे का सौदा होगा। फिर पेट्रोल की खपत बंढ़ेगी सो अलग। अतः हम कह सकते हैं कि ग्रामीण अर्थव्यवस्था की अपरिहार्य धुरी बैलगाड़ी की उपयोगिता आने वाले समय में भी बनी रहेगी। निकट भविष्य में हम उसके महत्व को किसी तरह से कम नहीं कर पाएंगे।

3/117 मालवीय नगर,
जयपुर-302017

(पृष्ठ 24 का शेष)

मरुस्थल क्षेत्र...

अच्छी किस्म की अधिक ऊन पैदा करने के लिए संकर नस्ल के 'मेरीनों मेढ़ों' की आपूर्ति जिले के भेड़ पालकों को अनुदानित दर पर की जानी चाहिए। घोड़ों की नस्ल सुधार और घोड़ियों के गर्भाधान की सुविधा के लिए प्रत्येक पंचायत समिति या तहसील मुख्यालय के पशु चिकित्सालय में उम्दा नस्ल का घोड़ा रखा जाना चाहिए। पशुपालकों द्वारा एकत्रित दूध की बिक्री की व्यवस्था कर दूध का उचित दाम पशुपालकों को दिलवाया जा सकता है। प्रत्येक कुएं पर हरा चारा उत्पादन प्रोत्साहन योजना लागू की जानी चाहिये। इसके अलावा समय-समय पर पशु पालन विभाग के कार्यकर्ताओं तथा पशुपालकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इसके अतिरिक्त पशु प्रयोगशालाओं की आधुनिकतम खोजों की जानकारी भी पशुपालकों तक पहुंचायी जानी चाहिए।

हनुमान मन्दिर के पीछे,
सदर बाजार, बाड़मेर
पिन 344001 (राज०)

(पृष्ठ 28 का शेष)

गांवों में बिजली...

इस तरह की सहकारी समितियों की संख्या बढ़ाने तथा अन्य राज्यों में भी इनकी स्थापना के प्रयास करने का फैसला किया गया है। इसके अलावा इन समितियों का एक संघ बनाने का प्रस्ताव है ताकि इनमें परस्पर तालमेल रहे और ये एक-दूसरे के अनुभवों से लाभ उठा सकें। इससे राज्य सरकारों तथा राज्य बिजली बोर्डों के साथ कभी-कभी पैदा होने वाले विवाद तथा अन्य समस्याएं हल करने में भी सहायता मिलेगी।

निगम गैर परंपरागत ऊर्जा स्रोतों से बिजली पैदा करने की योजनाओं को भी सहायता दे रहा है और अब इस काम में निजी क्षेत्र को भी भागीदार बनाया जा रहा है। राष्ट्रीय और राज्य स्तर पर बिजली उत्पादन में निजी क्षेत्र को सहभागी बनाने से बिजली के उत्पादन में जो वृद्धि होगी उससे गांवों में और अधिक बिजली उपलब्ध कराई जा सकेगी। आर्थिक विकास और बिजली एक दूसरे से जुड़े हुए है, अतः आर्थिक विकास के साथ-साथ बिजली की मांग निरंतर बढ़ेगी। गांवों में बिजली से जहां आर्थिक विकास में मदद मिलेगी, वहीं आर्थिक समृद्धि आने से बिजली की मांग बढ़ेगी। इसलिए भारत के गांवों में बसे करोड़ों लोगों की खुशहाली और कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए बिजली उत्पादन के प्रयासों में निरंतर तेजी लाने और उसकी वितरण व्यवस्था में सुधार लाने के लिए निरंतर प्रयास करने की आवश्यकता है।

1320, सैक्टर 12,
आर. के. पुरम,
नई दिल्ली - 110022

ग्राम्य विकास : समस्याएं और समाधान

लल्लन त्रिवेदी

भारत की अर्थ व्यवस्था का मुख्य आधार कृषि है। कृषि का कार्य गांवों में होता है और भारत की जनसंख्या का लगभग 75 प्रतिशत भाग गांवों में बसता है। गांवों में राष्ट्रीय विकास हेतु प्रति व्यक्ति उच्चतर आय, उत्पादन, रोजगार एवं लाभ दरों को अधिकाधिक बढ़ाने की सम्भावनाएं हैं। इसीलिए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने कहा था "भारत गांवों में बसता है और जब तक गांवों का विकास नहीं होता, तब तक भारत का विकास नहीं हो सकता।"

प्रसिद्ध अर्थशास्त्री एड्स स्मिथ की मान्यता है "अन्तिम विश्लेषण में किसी अर्थव्यवस्था का विकास इसके कृषि क्षेत्र की विकास दर पर निर्भर करता है।" वस्तुतः ग्राम्य विकास को राष्ट्रीय विकास की कुंजी कहना सर्वथा समीचीन है। ग्रामीण विकास का तात्पर्य ग्रामीणों के सर्वांगीण विकास से है। गांव में बसने वाले प्रत्येक व्यक्ति के जीवन का (वह चाहे कोई भी हो) आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और धार्मिक, सभी तरह का विकास हो यही ग्रामीण विकास का मुख्य उद्देश्य है। ग्रामीण विकास एक लम्बी और व्यापक प्रक्रिया है। इसलिए सरकार समग्र ग्रामीण विकास हेतु दीर्घकालिक योजनाओं के ज़रिये सतत् प्रयत्नशील है। हालांकि इससे गांवों के विकास दर में बढ़ोत्तरी हुई है लेकिन फिर भी अभी विकास की गति अपेक्षा से बहुत कम है।

समस्याओं का स्वरूप

ग्रामीण क्षेत्रों में निम्न समस्याएं भयावह रूप से मुंह बाये खड़ी हैं जो निरन्तर समान्तर समस्याओं को जन्म दे रही हैं :

1. जातिप्रथा, संयुक्त परिवार, रूढ़ियां, रीति-रिवाज इत्यादि ग्राम्य समाज में इस कदर व्याप्त हैं कि ग्रामीणों का अस्तित्व इनके मकड़जाल में पूरी तरह उलझा हुआ है।
2. ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल की विकट समस्या है। आज भी बहुत से ऐसे इलाके हैं, जहां पीने का पानी कोसों दूर से लाना पड़ता है।
3. आवासीय दृष्टि से हमारे गांव बहुत पिछड़े हैं। बहुत से लोग पेड़ों या झोंपड़ियों के नीचे रैन बसेरा करते हैं और सर्दी, गर्मी, वर्षा का संत्रास भोगते हैं।
4. ग्रामीण समाज में सहयोग और संगठन का नितान्त अभाव है। वे आपस में बेबुनियाद ईर्ष्या, द्वेष और वैर-भाव बनाये रखते हैं। आपसी सूझ-बूझ से काम नहीं करते।
5. कृषि-योग्य भूमि का न्यायसंगत ढंग से वितरण का अभाव है। फलतः उपार्जन कोई और करता है खाता कोई और है।
6. ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का प्रसार औसत से बहुत कम है। उसमें भी लड़कियों और महिलाओं में तो निहायत कम। शिक्षा का स्वरूप गड़बड़ है। शिक्षित व्यक्ति शारीरिक श्रम के महत्व से अनजान है और कृषि, पैतृक धंधे आदि को अपनाने में हीन भावना या शर्म संकोच का अनुभव करते हैं।
7. सिंचाई के साधनों का अभाव है जिसमें कृषि-योग्य भूमि का समुचित विकास नहीं हो रहा है तथा बंजर जमीनें यथावत पड़ी हैं।
8. सरकारी विकास कार्यक्रमों का सम्यक ज्ञान लोगों को नहीं है और इनका प्रचार-प्रसार वांछित स्तर तक नहीं हो रहा है जिससे कृषि कार्य में विकसित बीजों, रासायनिक खाद एवं कीटनाशक दवाओं का प्रयोग पर्याप्त रूप से नहीं हो रहा है। लोगों को विभिन्न विकास योजनाओं की जानकारी नहीं है।
9. दूर दराज तक विद्युतीकरण, सड़क, कुटीर उद्योग एवं मंडियों की आवश्यक व्यवस्था का अभाव गरीबों को और गरीब तो अमीरों को बेइन्तिहां सम्पन्न बना रहा है।
10. चिकित्सा की समुचित व्यवस्था का अभाव है। हालांकि प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई है फिर भी बहुत से ऐसे गांव हैं जहां से कोसों दूर स्वास्थ्य सेवाओं हेतु जाना पड़ता है।
11. अब भी कहीं-कहीं गांवों में ठकुराई या सामन्तशाही का दबदबा कमोबेश बरकरार है तथा दस्युओं के आतंक के

कारण भी ग्रामीणों में जान-माल की असुरक्षा की भावना कायम है।

12. परिवार नियोजन और यौन शिक्षण की व्यवस्था का अभाव है।

वैसे तो और भी बहुत सी समस्याएं हैं जो ग्राम्य विकास कार्यक्रम के फलीभूत होने में आड़े आती हैं तथा विकास की गति को धीमा करती हैं, परन्तु उपरोक्त ही अत्यधिक प्रमुख हैं। इसलिए इनके निवारण और समाधान हेतु व्यापक कार्यवाही की जानी चाहिए और यह सच है कि वर्तमान में ग्रामीण विकास हेतु अनेकानेक कार्यक्रम और योजनाएं सरकारी तथा गैर सरकारी स्तर पर कार्यान्वित हैं तथा सरकार समग्र ग्रामीण विकास हेतु पूरी तरह कटिबद्ध है।

हमारे माननीय प्रधानमंत्री नरसिम्ह राव ने अपने प्रथम राष्ट्रीय संदेश में कहा था "ग्रामीण जनता की उन्नति शासन की सर्वोच्च प्राथमिकता होगी। प्रशासन को और उत्तरदायी बनाया जाएगा और यह सुनिश्चित किया जाएगा कि विकास के लिए खर्च किया गया प्रत्येक रुपया लक्षित लाभार्थी को मिले।" परन्तु कहना ही पड़ेगा कि इन समस्याओं के स्वरूप पर सीधा आघात नहीं पड़ रहा है। यह आवश्यक है कि इस दिशा में सरकारी तंत्र और गैर सरकारी संस्थाएं तथा ग्रामीण समाज सभी मिलकर पूर्ण मनोयोग से समन्वित प्रयास करें ताकि विकास की प्रक्रिया को द्रुतगति मिल सके।

समाधान के क्षेत्र

निःसंदेह इस आशय से निम्न बिन्दुओं पर अमल किया जा सकता है :

- ग्रामीण विकास योजनाओं को ग्रामीण परिवेश में तथा ग्रामीण परिवेश के मुताबिक बनाया जाए और नगरों की अपेक्षा गांवों के लिए विकास योजनाओं की संख्या भी अधिक सुनिश्चित की जाए।
- सरकारी या गैर सरकारी प्रतिष्ठानों और निगमों द्वारा सभी आय वर्ग के लोगों हेतु वस्तुओं का उत्पादन सुनिश्चित किया जाए तथा सार्वजनिक वितरण प्रणाली को और प्रभावकारी बनाया जाए।
- ग्रामीण क्षेत्र की ऋण व्यवस्थाओं को सरल एवं कारगर बनाया जाए। लाभार्थियों को प्रतिस्पर्धी तथा संगठित बनाकर इस बात पर विशेष निगरानी रखी जाए कि विभिन्न कानूनों, नीतियों, कार्यक्रमों का सम्यक ज्ञान और लाभ उन्हें मिल रहा है या नहीं।
- कृषि भूमि के वितरण को न्याय संगत बनाया जाए।
- ग्रामीण क्षेत्रों में पेयजल, शौचालय, शिक्षा, आवास, विद्युत, चिकित्सा आदि की सम्यक व्यवस्था की जाए तथा इनकी उपयोगिता को उजागर किया जाए।
- न्याय प्रक्रिया को सर्वसुलभ और सस्ता बनाया जाए।
- ग्राम्य विकास योजना में कृषि को विशेष महत्व दिया जाए तथा कृषि को उद्योग का दर्जा देकर इसके आधुनिकीकरण, उत्पादकता मूल्य और विपणन पर ध्यान दिया जाए।
- ग्राम्य विकास योजनाओं के प्रबन्धकर्ताओं पर विकास का दायित्व स्थिर किया जाए। कार्यक्रमों की समयबद्धता सुनिश्चित की जाए।
- स्वैच्छिक संस्थाओं की भूमिका एवं विकास कार्य सम्पादन का मूल्यांकन करके उनके सहयोग की व्यवस्था की जाए।

वास्तव में ग्रामीण विकास एक दीर्घकालिक कार्य है तथापि विकास दर को चमत्कारिक ढंग से बढ़ाकर इस दिशा में अत्यंत सार्थक प्रयास किया जा सकता है और इसके तहत आवश्यक है इन मूलभूत समस्याओं का समाधान। पर यह तभी सम्भव है जब इस कार्य से जुड़े लोगों में सच्ची लगन और कर्तव्य निष्ठा जागृत हो जाए।

द्वारा प्रधान डाकघर,
बांदा (उ. प्र.) - 201001

महिलाओं की प्रगति की राह में रोड़े, चुनौतियां और प्रेरणाएं

✍ राजेन्द्र प्रसाद खेकड़ा

विश्व की लगभग आधी जनसंख्या महिलाओं की है और भारत में अधिकांश महिलाएं अशिक्षित या अल्पशिक्षित हैं। वस्तुतः यह देश की जनसंख्या का एक बहुत बड़ा वर्ग है। भारत में लड़की के जन्म के साथ ही उस पर पारिवारिक बन्धनों का कसाव प्रारम्भ हो जाता है। वस्तुतः भारत के बहुत से राज्यों में भी महिला को पितृ-गृह में एक भार के रूप में ही माना जाता है। पति-गृह में जब वह जाती है तो उससे यह आशा की जाती है कि वह पति के निर्देशन में कार्य करे, इससे पति-पत्नी में मित्रभाव का अभाव व दासता का भाव ही प्रमुख हो जाता है।

प्रगति पथ में रोड़े

भारतीय महिला को ऐसी परिस्थितियों में रहकर जीवन यापन करना पड़ता है कि जब भी वह प्रगति की ओर अग्रसर होने का प्रयास करती है, परम्परायें, रूढ़िवादी सामाजिक परिवेश व लोगों के निहित स्वार्थ उसके मार्ग में रोड़े बनकर सामने आते हैं। प्रकृति ने महिला को शारीरिक रूप से पुरुष की तुलना में कुछ कमजोर बनाया है, संभवतया इसी से हमेशा ही पुरुषों का उस पर प्रभुत्व रहा है।

सभ्य समाज में जहां निर्बल को बलवान द्वारा मात्र अपने बल के कारण दबाना ठीक नहीं समझा जाता, वहां अब यह आवश्यक समझा गया है कि महिलाओं को भी पुरुष के समान अधिकार प्राप्त हों। उक्त रूढ़िवादी सामाजिक परिवेश से किसी प्रकार जब भी भारतीय महिला घर की चहारदीवारी से बाहर निकलकर जिस क्षेत्र में भी जाने का प्रयास करती है उस क्षेत्र के निहित स्वार्थ सभ्यता का मुखौटा ओढ़े उसके दुश्मन बन जाते हैं और उस पर दबावों का एक सिलसिला प्रारंभ हो जाता है जिससे वह घबराकर पुनः चहारदीवारी को ही अपने भाग्य की नियति मान लेने को विवश हो जाती है। कोई भी महिला जो कि ऐसी परिस्थितियों में आगे बढ़ने का प्रयास करती है तो उसके लिए आवश्यक है कि उसे परिवार के सदस्यों का पूरा सहयोग मिले, जिसके बिना उसका घर की चहारदीवारी से निकलना ही मुश्किल है। ऐसे में महिला की उपलब्धियों को लोग यह कहकर झुठला देते हैं कि यह सब तो उसके पति और श्वसुर के सहयोग के कारण संभव हुआ है। इस तरह महिला की उपलब्धि का श्रेय पुरुष को दिया जाता है। और वह देखती रह जाती है। इससे वह अपने अर्न्तमन की टीस से कराह उठती है लेकिन इलाज पास नहीं हैं क्योंकि प्रगति हेतु सहयोग एक आवश्यक शर्त है।

चुनौतियां

दिन प्रतिदिन बढ़ती हुई महंगाई ने पारिवारिक इकाई पर यह दबाव डाला है कि आर्थिक गाड़ी को खींचने के लिए पुरुषों के साथ-साथ महिलायें भी धनोपार्जन हेतु कार्य करें। निम्न वर्ग के परिवार की महिलाएं प्रारंभ से ही पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर परिवार की आर्थिक गाड़ी खींचने में मदद करती रही हैं। महंगाई के बढ़ते हुए दबाव ने मध्यम वर्ग व निम्न मध्यम वर्ग के परिवारों पर यह दबाव डाला है कि इस वर्ग की महिलाएं भी परिवार को सुख-सुविधायें उपलब्ध कराने हेतु कार्य करें, जिसे इस वर्ग की महिलाओं ने एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया है।

उच्च वर्ग के परिवारों में प्रायः धन की कमी नहीं होती है, किन्तु लगभग सभी वर्ग की महिलाओं ने यह महसूस किया है कि परिवार में धनोपार्जन करने वाले व्यक्ति को अधिक सम्मान प्राप्त होता है। महिलाओं ने अपने परिवार में आदर व सम्मान प्राप्त करने हेतु भी धनोपार्जन को एक चुनौती के रूप में स्वीकार किया और इन चुनौतियों के फलस्वरूप भारतीय महिला ने घर की चहारदीवारी के बाहर कदम रखा है या कदम रखने की बात सोची है।

प्रेरणायें

देश के संविधान ने भारतीय महिला को पुरुष के समान अधिकार और उसे आगे बढ़ने के समान अवसर दिये हैं। आज भारतीय महिला को पुरुषों के समान सभी अधिकार प्राप्त हैं। समानता का यह अधिकार महिलाओं की प्रगति के लिए प्रेरणा स्रोत है।

बदलते हुए सामाजिक परिवेश से बहुसंख्यक पुरुषों ने महिलाओं को आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया ही है। आज पति, श्वसुर भी यह चाहने लगे हैं कि उनकी पत्नी या बहू घर

संकाय सदस्य, सहकारी प्रबंध संस्थान, डूंगरी, जयपुर

की जिम्मेदारी सम्भालने में उनका हाथ बंटाये और वस्तुतः यह औद्योगीकरण व बढ़ती हुई महंगाई में आवश्यक भी है।

ग्रामीण महिलाओं को समाज में समुचित स्थान दिलाने के लिए पंचायतों के चुनाव में आरक्षण का प्रावधान किया गया है। यद्यपि संविधान में अब भी महिलाओं को पुरुषों के बराबर ही सामाजिक-राजनीतिक अधिकार प्राप्त हैं और वे संसद या विधानसभाओं आदि के चुनावों में भाग ले सकती हैं, किन्तु वास्तविक रूप में इनमें महिलाओं की भागीदारी बहुत ही सीमित है। देश में विधायकों एवं सांसदों में महिलाओं की भागीदारी लगभग दो प्रतिशत तक ही है जबकि महिलाएं जनसंख्या का आधा भाग हैं— इससे यह स्पष्ट इंगित होता है कि देश का शासन चलाने में महिलाओं की राय, उनकी समस्याओं एवं भावनाओं को बहुत कम महत्व मिलता है। दो प्रतिशत का अर्थ यदि नगण्य नहीं भी कहा जाये तो यह महत्वहीन तो है ही। ऐसे में जब पंचायतों के चुनाव में महिलाओं हेतु तैंतीस प्रतिशत आरक्षण से उन्हें वे अधिकार मिल सकेंगे जो उन्हें आगे बढ़ाने हेतु बड़े सहायक सिद्ध होंगे।

पंचायत चुनाव में महिलाओं का स्थान आरक्षण उन्हें प्रेरणा का एक ऐसा स्रोत प्रदान करेगा जिससे लाखों महिलाएं घर की चहारदीवारी से निकलकर बाहर आएंगी और पंचायत से लेकर जिला परिषद तक शासन में अपनी सशक्त भूमिका निबाहेंगी। इस सबसे स्वतः ही महिलाओं की राय, उनकी भावनाओं और समस्याओं को ठोस महत्व मिलना प्रारम्भ हो सकेगा जिससे भविष्य में भारतीय महिलाओं की प्रतिभा के चमत्कारी परिणाम सामने आएंगे।

उपसंहार

इस तरह हम पाते हैं कि भारतीय महिला के प्रगति पथ पर पग-पग पर रोड़े पड़े हुए हैं। औपचारिक रूप से सभी लोग प्रायः महिलाओं के विकास व उनकी उन्नति की बात करते हैं किन्तु इनमें से अधिकांश वस्तुतः महिलाओं की प्रगति को मन से स्वीकार नहीं कर पाते। जो महिलाएं प्रगति पथ पर आगे बढ़ने हेतु प्रयत्न करती हैं उनके सामने वे अपने अहम् भाव के कारण रोड़े बनकर खड़े हो जाते हैं और उस महिला के बढ़े हुए कदमों को नकारने का प्रयास करते हैं।

वस्तुतः किसी भी राष्ट्र की प्रगति का सही पैमाना यह है कि राष्ट्र की महिलाओं ने क्या प्रगति की है और उनके समाज में नारी का क्या स्थान है, क्योंकि यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि जिस समाज में नारी का सम्मान नहीं होता वह शीघ्र नष्ट हो जाता है। संभवतः इसी से संस्कृत में कहा जाता है :

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते-रमन्ते तत्र देवता"

(पृष्ठ 29 का शेष)

जादू...

दिन चलता। कभी न कभी तो इसका अंत होना ही था। वासंती जानती थी कि इस खेल का पटाक्षेप दुखद होगा, मार्मिक होगा और हृदयभेदी होगा और आज शाम उस छोटे से हंसते खेलते घर में इस खेल का दुःखद अंत हुआ था। बनवारी ने फिर एक बार करवट बदल कर वासंती की तरफ देखा। वासंती तनिक मुस्करायी और बोली "सुनिये आप इस बात को अपने दिल से इतना न लगाइये। मैं राजू को समझा दूंगी। मैं जानती हूं वह कैसे इस बात को भूलेगा। इस कार्य को करने में समय अवश्य लगेगा लेकिन मैं आपको विश्वास दिलाती हूं कि यह जादू वाली बात उसके दिमाग से मैं अवश्य निकाल दूंगी। ऐसी बात प्यार से, सब्र से और उससे खेलते-खेलते उसके दिमाग से निकालनी पड़ेगी। बस मैं तुमसे एक वादा चाहती हूं। तुम भविष्य में उतने ही पैर फैलाओगे जितनी तुम्हारी चादर होगी।" बनवारी ने धीरे से वासंती का हाथ दबाया था इस विश्वास के साथ कि तुम्हारी सारी बातें मुझे मंजूर हैं। सच है तुम्हारा कहना दुनिया में हर चीज़ का ढोंग किया जा सकता है पर पैसे का ढोंग नहीं किया जा सकता। एक दृढ़ निश्चय के साथ उसने अपने दिमाग में आते तरह-तरह के विचारों को रोका। भौतिकता और दिखावे की इस अंधी दौड़ में वह शामिल नहीं होगा। उसका छोटा सा परिवार सीमित साधनों में ही संतुष्ट था, संतुष्ट है और संतुष्ट रहेगा। यही जीवन का सत्य है।

III/2, आकाशवाणी कालोनी,
जलगांव (महाराष्ट्र),
पिन - 425001

जनसंख्या विस्फोट एवं जनसंख्या शिक्षा

✍सत्यपाल मलिक

बेतहाशा बढ़ती हुई जनसंख्या को कैसे रोका जाय, यह समस्या आज विकासशील देशों के लिए एक बड़ी चुनौती बनी हुई है। हमारे देश में जनसंख्या वृद्धि की समस्या शनैः शनैः विकराल रूप धारण करती जा रही है। आज स्थिति यह है कि भारत का भू-भाग विश्व के कुल भू-भाग का 2.4 प्रतिशत है, जबकि इसकी आबादी विश्व की जनसंख्या का 16 प्रतिशत है। आजादी के समय भारत की जनसंख्या 34.20 करोड़ थी जो अब बढ़कर 90 करोड़ से भी अधिक हो गई है। इस प्रकार स्वतंत्रता के पश्चात जनसंख्या में ढाई गुना से भी अधिक वृद्धि हुई है। प्रतिवर्ष जनसंख्या में लगभग एक करोड़ 70 लाख लोग बढ़ जाते हैं जिनके लिए कपड़ा, मकान, भोजन, शिक्षा, चिकित्सा की व्यवस्था करने के लिए अतिरिक्त संसाधनों की जरूरत होती है।

जनसंख्या के तीव्र गति से बढ़ने का मुख्य कारण उच्च जन्म दर है। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भारत में मृत्यु दर में तेजी से कमी आई है। विज्ञान की प्रगति और चिकित्सा सुविधाओं में सुधार से बहुत सी जानलेवा बीमारियों पर नियंत्रण पा लिया गया। नतीजा है मृत्यु दर में कमी। परन्तु हम इसकी तुलना में जन्म दर कम नहीं कर पाये। हमारी जन्म दर जो 1951-61 में 41.7 प्रति हजार थी, वह घटकर 28.5 प्रति हजार हो गई है। परन्तु इसी अवधि में हमारी मृत्यु दर में तेजी से गिरावट आई है और वह 22.8 प्रति हजार से घटकर 9.2 प्रति हजार रह गई है।

जनसंख्या के लिहाज से भारत का स्थान विश्व में चीन के बाद दूसरे स्थान पर आता है। परन्तु यदि भारत में जनसंख्या की यही रफ्तार रही तो 21वीं शताब्दी के प्रारंभ में ही भारत की जनसंख्या चीन से अधिक हो जायेगी । पहले हमारी जनसंख्या में हो रही लगातार वृद्धि ने हमारे कठिन परिश्रम और योजनाबद्ध विकास की सारी उपलब्धियों पर पानी फेर दिया है। जो भी आर्थिक प्रगति हम करते हैं उसे सतत बढ़ती हुई आबादी निष्प्रभावी बना देती है जिससे आम व्यक्ति को लाभ नहीं मिल पाता। यद्यपि हमारा खाद्य उत्पादन 1951 में 5.20 करोड़ टन से बढ़कर 1994-95 में 18.5 करोड़ हो गया परन्तु प्रति व्यक्ति भोजन की मात्रा में बहुत कम वृद्धि हुई है। यह 1951 में 394.9 ग्राम से बढ़ कर 1991 में 514.2 ग्राम हो गई। खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता 1991 में 500 ग्राम थी जो 1993 में 487 ग्राम रह गई। प्रति व्यक्ति के हिसाब से दालों की उपलब्धता 1951 में 80.7 ग्राम से घट कर 1991 में मात्र 40 ग्राम रह गई। हमारे देश में साक्षरता का स्तर 1961 में 30.11 प्रतिशत था। 1991 की जनगणना के अनुसार यह 52.11 प्रतिशत हो गया लेकिन निरक्षरों की कुल संख्या बढ़कर 36.22 करोड़ हो गई जो कि आजादी के समय की हमारी कुल जनसंख्या के बराबर है। देशव्यापी स्वास्थ्य सुविधाओं के बावजूद हमारे यहां डाक्टर और रोगी का अनुपात विकसित देशों की तुलना में बहुत कम है। तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण रोजी के लिए गांव वाले शहरों की ओर भाग रहे हैं। इससे शहरों में आवास समस्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इस वृद्धि का पर्यावरण पर भी विनाशकारी प्रभाव पड़ रहा है। शुद्ध जल और शुद्ध वायु मिलना दूभर होता जा रहा है। इससे जीवन की गुणवत्ता ही प्रभावित नहीं हो रही बल्कि जीवन का आधार ही क्रमशः जर्जर होता जा रहा है।

जनसंख्या शिक्षा की आवश्यकता

समस्या की भयावहता को देखते हुए भारत समेत विश्व के अनेक देशों में जनसंख्या के संबंध में अनेक नीतियां अपनाई जा रही हैं। प्रारम्भ में इसके लिए परिवार नियोजन कार्यक्रम को प्रमुखता दी गयी। परन्तु विकासशील देशों में व्याप्त निरक्षरता, विशेष तौर से महिलाओं में कम साक्षरता दर, लड़कियों का छोटी आयु में विवाह, घर परिवारों में लड़के को वरीयता, सामाजिक एवं धार्मिक रूढ़ियां, महिलाओं की कमजोर सामाजिक स्थिति आदि के कारण परिवार नियोजन संबंधी नीतियों की उपलब्धियां सीमित ही रहीं। यही कारण है कि इसके लिए शिक्षा के एक वृहद कार्यक्रम की परिकल्पना की गई जो विद्यार्थियों, युवकों व युवतियों तथा वयस्कों में इस दिशा में चिन्तन की प्रवृत्ति पैदा करे। यह आवश्यक समझा गया कि कल बनने वाले माता-पिता परिवार के आकार और जनसंख्या के दूसरे पहलुओं के प्रति रचनात्मक एवं अनुकूल रुख अपनाएं। इसके लिए शिक्षा को ही सबसे महत्वपूर्ण एवं

जनसंख्या शिक्षा अधिकारी, स्वास्थ्य और परिवार कल्याण मंत्रालय

प्रभावी उपाय माना गया। यहीं से जनसंख्या शिक्षा की शुरुआत हुई। भारत सहित एशिया के अनेक देशों ने जनसंख्या शिक्षा के कार्यक्रमों को कारगर ढंग से लागू करने का निर्णय लिया।

जनसंख्या-शिक्षा एवं परिवार नियोजन में अन्तर

जनसंख्या शिक्षा का मूल आधार इसका शैक्षिक पहलू है। इसे न तो परिवार नियोजन कार्यक्रम का अंग माना जाना चाहिए और न ही इसका संबंध यौन शिक्षा है। इसमें न तो सेवा व्यवस्था है और न ही आंकड़ों का निर्धारित लक्ष्य। जनसंख्या शिक्षण का क्षेत्र बहुत व्यापक है। जनसंख्या-शिक्षा जनसंख्या वृद्धि और उससे उत्पन्न समस्याओं की ओर ध्यान आकृष्ट करके छोटे परिवार के आदर्श में आस्था जगाती है जबकि परिवार नियोजन कार्यक्रम में परिवार को सीमित रखने के विभिन्न कृत्रिम तरीकों की जानकारी दी जाती है। जनसंख्या शिक्षा प्राथमिक स्तरों के विद्यार्थियों से लेकर विश्वविद्यालय के छात्रों और वयस्कों तक को दी जाती है परन्तु परिवार नियोजन के दायरे में केवल वे लोग ही आते हैं जो संतान उत्पन्न करने के आयु वर्ग में हैं। जनसंख्या-शिक्षा से जीवन के रहन-सहन को ऊंचा करने का दृष्टिकोण विकसित होता है जबकि परिवार नियोजन कार्यक्रम में परिवार में सदस्यों की संख्या सीमित करने पर बल दिया जाता है। अतः जनसंख्या शिक्षा का उद्देश्य सही विचारधारा उत्पन्न करना है। इस प्रकार जनसंख्या शिक्षा परिवार नियोजन की सफलता की भूमिका तैयार करती है।

जनसंख्या शिक्षा के प्रमुख क्षेत्र

अतः जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षणिक कार्यक्रम है। यह जन साक्षरता अभियान का ही एक अभिन्न अंग है। जनसंख्या शिक्षा एवं जन साक्षरता अभियान दोनों का ही उद्देश्य लोगों में जागरूकता बढ़ाना है। यूनेस्को के अनुसार - "जनसंख्या शिक्षा एक शैक्षणिक कार्यक्रम है, जिसके द्वारा परिवार, समुदाय, राष्ट्र और विश्व की जनसंख्या स्थिति और उसके प्रभावों के प्रति लोगों में जागरूकता उत्पन्न करना तथा उत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार को विकसित करना है।"

जनसंख्या शिक्षा के प्रमुख क्षेत्र इस प्रकार हैं :

- जनसंख्या अध्ययन एवं डेमोग्राफी।
- जनसंख्या स्थिति, विकास एवं जीवन की गुणवत्ता में पारस्परिक संबद्धता स्थापित करने संबधी समझ बढ़ाना।
- जनसंख्या वृद्धि एवं पर्यावरण।
- जनसंख्या वृद्धि से सम्बन्धित परंपराएं एवं मान्यताएं।
- विवाह की सही आयु और संबंधित मुद्दे।
- छोटे परिवार का आदर्श एवं बच्चों में अन्तराल।
- मातृ-शिशु कल्याण।
- बच्चों के प्रति माता-पिता का उत्तरदायित्व।

  इसके साथ ही वर्तमान में अत्यधिक महत्व के कुछ और भी विषय सम्मिलित किए गये हैं, जैसे :

- नारी की प्रतिष्ठा बढ़ाना एवं लड़कियों के साथ भेदभावपूर्ण तथा उपेक्षापूर्ण दृष्टिकोण की समाप्ति।
- लड़के-लड़की के प्रति समानता का दृष्टिकोण।
- परिवार सम्बन्धी निर्णयों में पति-पत्नी की सम्मिलित भागीदारी या पति-पत्नी के बीच आपसी समझ तथा सम्मान।
- घातक रोग एड्स की जानकारी तथा उससे बचाव के तरीके।
- नशाखोरी के दुष्परिणाम तथा शिक्षा के माध्यम से नशाखोरी से मुक्ति।

इस प्रकार जनसंख्या शिक्षा का संबंध मूलतः जनसंख्या समस्या और कतिपय मूल्यों से है। यह राष्ट्रीय विकास में योग देने वाला प्रमुख कार्यक्रम है। इसका मुख्य उद्देश्य लोगों के बेहतर जीवन के लिए शिक्षण प्रदान करना है ताकि एक स्वस्थ, समृद्ध एवं खुशहाल समाज का निर्माण हो सके।

जेड. पी. 13,
मौर्या एनक्लेव, पीतमपुरा,
दिल्ली - 110034

बेल : आहार भी, औषध भी

डा० विजय कुमार उपाध्याय, प्राध्यापक, भूगर्भ, इंजिनियरी कालेज, भागलपुर - 813210

भारत में बेल का उपयोग प्रागैतिहासिक काल से ही होता आ रहा है। बेल-वृक्ष के लगभग सभी अंग (जैसे फल, फूल, पत्ते, छाल, जड़ इत्यादि) किसी न किसी रूप में उपयोग में लाये जाते रहे हैं। इसका आहार के रूप में तो उपयोग होता ही है, यह औषधीय गुणों से भी भरपूर है। बेल के पत्ते पूजा के साथ-साथ औषध तथा आहार के रूप में भी उपयोग में आते रहे हैं। पौराणिक ग्रंथों के अध्ययन से पता चलता है कि भगवान शंकर की अर्द्धांगिनी पार्वती जी ने काफी लम्बे समय तक सिर्फ बेल के पत्तों का सेवन कर तपस्या की थी। महात्मा गांधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि वे बचपन में किसी पंडित जी से पौराणिक कथा सुना करते थे। कथा बाचने वाले पंडित जी एक बार कुष्ठ रोग से ग्रस्त हो गये थे। उन्होंने भगवान शंकर पर बेलपत्र चढ़ाना, उन बेलपत्रों को पीस कर प्रसाद स्वरूप पीना तथा उसकी लुगदी को अपने घावों पर लगाना शुरू किया तथा थोड़े समय के बाद ही वे रोगमुक्त हो गये। अभी कुछ ही समय पूर्व समाचार पत्रों में खबर छपी थी कि दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय में डी-लिट डिग्री हेतु काम करता हुआ डा0 रमेश कुमार झा नामक एक शोध छात्र दो वर्षों तक सिर्फ बेल के पत्तों पर अपना जीवन यापन करता रहा तथा वह पूर्ण रूप से स्वस्थ रहा।

बेल पादप जगत के रूटेसी कुल का सदस्य है। संस्कृत में इसे बिल्व तथा अरबी में सफरजले कहा जाता है। इसका वृक्ष साधारण तौर पर 8-9 मीटर (25-30 फुट) ऊंचा होता है। जिसमें लम्बे तथा नुकीले कांटे मौजूद रहते हैं। इसके पत्ते तीन-तीन के समूह में पाये जाते हैं। पत्ते प्रायः पांच से 10 सेमी. तक लम्बे रहते हैं। ग्रीष्म ऋतु में हरिताभ उजले रंग के फूल छोटे-छोटे गुच्छों के रूप में विकसित होते हैं। फूलों में शहद के समान हल्की सुगंध पायी जाती है। फूलों के झड़ने के साथ ही नन्हें-नन्हें फल लगते हैं। इन फलों के बढ़ने तथा पकने में लगभग साल भर का समय लगता है। फल बाहर से कठोर तथा चिकने होते हैं। कच्ची अवस्था में ये हरे रंग के रहते हैं तथा पकने पर पीले पड़ जाते हैं। साधारण तौर पर फल की आकृति गोल होती है परन्तु लम्बाई लिये गोल फल भी दिखाई पड़ते हैं। बेल के पूर्ण विकसित फल प्रायः आधा किलो से दो किलो तक वजन वाले होते हैं।

वैसे तो बेल प्रायः पूरे भारत में पाया जाता है, परन्तु मध्य प्रदेश, बिहार, बंगाल तथा दक्षिण भारत में इसके वृक्ष अधिक संख्या में देखे जा सकते हैं। समुद्र तल से 1216 मीटर की ऊंचाई तक पश्चिमी हिमालय क्षेत्र में यह वृक्ष स्वतः उगता है।

बेल के गुण

बेल-फल के गूदे के रासायनिक विश्लेषण से पता चलता है कि इसमें 84 प्रतिशत जल, 0.7 प्रतिशत प्रोटीन, 0.7 प्रतिशत वसा, 14.2 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट तथा शेष अन्य तत्व रहते हैं। इसमें विटामिन बी, सी तथा ई होते हैं। खनिजों में लोहा, कैल्शियम तथा फास्फोरस काफी मात्रा में होता है। इसमें टैनिन नामक द्रव्य भी पर्याप्त मात्रा में मौजूद रहता है। इसी के कारण बेल में औषधीय गुण होते हैं। बेल के पत्तों के रासायनिक विश्लेषण से पता चलता है कि इसमें 0.6 प्रतिशत तेल मौजूद रहता है जो हरे पीले रंग का तथा एक विशेष गंध से युक्त रहता है। इसके अलावा पत्तों में ईगेलिन, ईगेलिनिन आदि अनेक क्षार तथा कौमेरिन पाये जाते हैं। बेल के बीजों में लगभग 12 प्रतिशत तेल पाया जाता है। यह तेल रंग में हल्का पीला तथा स्वाद में तिक्त रहता है। बेल की छाल में लोहा, सोडियम, पौटाशियम, मैगनीशियम तथा फास्फोरस जैसे तत्व मौजूद रहते हैं।

बेल के पके फल का गूदा स्वाद में मीठा होता है। गूदे को मूल रूप में खाया जा सकता है अथवा इसके रस को निकालकर उसका भी सेवन किया जा सकता है। कभी-कभी कच्चे बेल को आग पर पकाकर उसका गूदा खाने के उपयोग में लाया जाता है। पाचन तंत्र की तकलीफों तथा पुरानी पेचिश में बेल के गूदे का उपयोग लाभदायक पाया गया है। बेल के फल का रस पेट तथा आंत की बीमारी और हैजे में लाभ पहुंचाता है। बेल का गूदा और उसका गाढ़ा रस कोष्ठबद्धता एवं वायु-विकार में बहुत उपयोगी है। बेल का फल पौष्टिक है और रक्त को शुद्ध करता

(शेष पृष्ठ 42 पर)

चित्रकूट में वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों के बढ़ते कदम

डा० हिमांशु शेखर,
रसायन विभाग,
चित्रकूट ग्रामोदय विश्वविद्यालय,
चित्रकूट-सतना (म.प्र.)

विन्ध्य पर्वत की गोद में बसा चित्रकूट धाम व्यापक रमणीयता, चित्ताकर्षक सौन्दर्यसुषमा युक्त परम शांति प्रदान करने वाली पावन व पुनीत स्थली है। यह भारत की हृदय स्थली होने के साथ ही श्रद्धा, विश्वास और भक्ति का केन्द्र है। यह धरा महर्षि अत्रि, सती अनुसुईया और सतीक्षण मुनि का उद्‌गम स्थल है। यह क्षेत्र महर्षि वाल्मीकि, गोस्वामी तुलसीदास, रहीम साहब जैसे संतों का जन्म स्थल व कर्मक्षेत्र रहा है। महर्षि वाल्मीकि ने इसके प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन मुक्त कंठ से किया है। गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसे असीम शांति व विश्राम प्रदायक कहा है।

यह पावन भूमि दो प्रदेशों के दो भिन्न जिलों बांदा (उत्तर प्रदेश) व सतना (मध्य प्रदेश) का हृदय स्थल है, जिसकी प्राकृतिक सीमा मंदाकिनी, पयस्वनी एवं सरयू नदियों से सीमांकित है। यहां वनवासी और मैदानी इलाकों की दो भिन्न संस्कृतियों का मिलन होता है। एक ओर पहाड़ियां है तो दूसरी ओर मैदानी भाग। यह शिक्षा और पिछड़ेपन का एक नमूना है। यह स्थल अन्य कई दृष्टियों से महत्वपूर्ण है।

शैक्षणिक दृष्टिकोण से अत्यंत पिछड़े होने के कारण बुन्देलखण्ड-बघेलखण्ड के इन क्षेत्रों को विकसित करने के लिए मध्य प्रदेश सरकार ने एक अधिनियम पारित कर चित्रकूट में ग्रामोदय विश्वविद्यालय की स्थापना 12 फरवरी 1991 को की तथा यहां की दूसरी संस्था सद्‌गुरु सेवा संघ ट्रस्ट है। करीब तीन दशक से यह संस्था लगातार इस क्षेत्र के विकास के लिए प्रयास कर रही है। इस ट्रस्ट का अपना अस्पताल, कृषि फार्म, डेयरी, विद्यालय तथा मंदिर हैं।

ऊर्जा के विभिन्न स्रोत

इस संस्था की डेयरी में 51 गाय, 10 बछड़ियां, 15 बछड़े और दो सांड हैं। कुल 78 पशु है। इनसे लगभग 8-9 क्विंटल गोबर प्रतिदिन प्राप्त होता है। इसके दो बायोगैस संयंत्र हैं। पहले वाले संयंत्र में 50 कि. ग्रा. गोबर डाला जाता है। और उससे प्राप्त बायो ऊर्जा का उपयोग ट्रस्ट की अतिथि शाला में पानी, दूध आदि को गर्म करने में किया जाता है। दूसरा 45 घन सेन्टीमीटर क्षमता वाला संयंत्र मध्य प्रदेश ऊर्जा विकास निगम द्वारा तथा अपराम्परिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय, भारत सरकार के सौजन्य से 29 जुलाई 1988 को स्थापित किया गया। संयंत्र के टैंक की गहराई तथा व्यास 4.8 मीटर है। इसमें प्रतिदिन लगभग 6-7 क्विंटल गोबर डाला जाता है। उत्पादित गैस का उपयोग ट्रस्ट के भोजनालय के काम में किया जाता है। इस भोजनालय में 500 व्यक्ति प्रतिदिन (सुबह तथा शाम) भोजन लेते हैं। एक आकलन के अनुसार इतना भोजन बनाने में लगभग 30 लीटर कैरोसीन तेल या 90 यूनिट विद्युत ऊर्जा की खपत होती है।

मध्य प्रदेश ऊर्जा विकास निगम के माध्यम से तथा भारत सरकार के अपारंपरिक ऊर्जा स्रोत मंत्रालय के सौजन्य से ट्रस्ट में चार-पांच सौर ऊर्जा गर्म जल संयंत्रों की स्थापना 29 जुलाई 1988 को की गई। प्रत्येक संयंत्र में दस कलेक्टर्स लगे हैं तथा इसकी क्षमता 1000 लीटर जल प्रतिदिन 60 सें. तक गर्म करने की है। गर्म जल का उपयोग आवासों में तथा जानकी कुण्ड अस्पताल में डाक्टरी औजारों को जीवाणुरहित करने में किया जाता है। ध्यान देने योग्य बात यह है कि चित्रकूट के जल की कठोरता काफी अधिक है। एक विश्लेषण के अनुसार एक संयंत्र द्वारा किया गया कार्य लगभग 50 यूनिट विद्युत ऊर्जा के समतुल्य है।

प्रस्तावित योजना

एक वर्ष पूर्व ग्रामोदय विश्वविद्यालय के लोक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी संस्थान की ओर से गोबर पर आधारित 15 घनमीटर क्षमता वाले बायो गैस संयंत्र का प्रस्ताव मध्य प्रदेश ऊर्जा निगम को भेजा गया। इस संयंत्र के लिए आवश्यक गोबर विश्वविद्यालय के पशु संकाय के पशुओं से प्राप्त होगा। यहां की डेयरी में 25 गाय, बछड़े तथा बकरियां हैं और इनके मेमनों की संख्या भी 25 है। इससे प्रतिदिन 250 कि. ग्रा. विष्ठा प्राप्त होती है। जिससे

1000 यूनिट विद्युत ऊर्जा के समतुल्य बायो ऊर्जा की प्राप्ति होगी साथ ही 48,000/- रुपये प्रति वर्ष का कार्बनिक खाद प्राप्त होगा। विश्वविद्यालय के ऊर्जा मंच के वैज्ञानिकों के एक दल द्वारा स्फटिक शिला परिसर में बढ़ती ऊर्जा खपत को ध्यान में रखकर परम्परागत स्रोतों से प्राप्त ऊर्जा की खपत कम करने के लिए वैकल्पिक ऊर्जा स्रोत का सर्वेक्षण किया गया तथा इसके आधार पर विवरण प्रस्तुत किया गया कि परिसर में उत्पन्न बायो ऊर्जा से करीब 1000 एम. डब्ल्यू. एच. विद्युत ऊर्जा प्रतिमाह प्राप्त होगी जिसका उपयोग परिसर में रोड लाईटें, कैन्टीन तथा रसायन विभाग प्रयोगशाला में करने की योजना है।

ग्रामोदय विश्वविद्यालय के चतुर्थ स्थापना दिवस के अवसर पर 11 फरवरी 1995 को एक प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था जिसमें विज्ञान संकाय द्वारा प्रस्तुत की गई झांकियों में वैकल्पिक ऊर्जा प्राप्ति से सम्बन्धित अनेक उपकरण प्रदर्शित किए गए जिसमें तीन सोलर वाटर हीटर (भिन्न भिन्न माडलों के) एक सोलर ग्रेन ड्राइवर तथा फोटो वाल्टइक सेल पर आधारित एक सौर ऊर्जा यंत्र था। पर सभी का ध्यान एक मेज घड़ी पर था जो बैटरी की जगह हरी पत्ती से चल रही थी। इस विश्वविद्यालय में हरी पत्ती से बिजली उत्पन्न करने की तकनीक का विकास किया जा रहा है जिसमें एक वर्ग इंच के पत्तों से करीब 50 से 100 घंटे तक 1.5 वोल्ट और 100 क्यू. डब्ल्यू. की शक्ति प्राप्त की गई है।

दरअसल हरी पत्तियों का पोषण व संवर्धन उसकी कोशिका में भण्डारित रसायनिक ऊर्जा द्वारा होता है। उनकी जैविक प्रक्रियाओं के दौरान आवेशित कणों का विस्थापन होता है जिसके कारण जैव विद्युत उत्पन्न होती है। विद्युत की मात्रा व शक्ति पत्तियों के लक्षण गुण तथा इलैक्ट्रोड की क्षमता पर निर्भर करती है। इन पत्तियों से ऊर्जा की कम खपत वाले इलैक्ट्रोनिक उपकरण जैसे–कैल्कुलेटर, अंकीय घड़ी, संगीतमय उपकरण आदि को चलाया जा सकता है।

प्रस्तावित योजना

विश्वविद्यालय ऊर्जा मंच द्वारा अपराम्परिक ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों पर विशिष्ट, वैज्ञानिकों व प्राध्यापकों के लेख निमंत्रित कर उन्हें संकलित किया गया है। और उन्हें पुस्तक का स्वरूप प्रदान करने में अथक परिश्रम किया जा चुका है। इसके अन्तर्गत सौर ऊर्जा, बायोमास व अपशिष्टों से ऊर्जा, हरी पत्तियों से ऊर्जा, पवन से ऊर्जा आदि पर अनेक लेख संकलित किए गए हैं। हाल ही में चित्रकूट नयागांव हनुमान धरा रोड के पर्यावरणीय सर्वेक्षण के आधार पर पाया गया कि इस 2000 जनसंख्या वाले गांव में 90 प्रतिशत घरों में शौचालय की व्यवस्था नहीं है। यदि यहां कम कीमत के सार्वजनिक शौचालयों की व्यवस्था की जाए तो मल-जल प्रदूषण तथा इनसे उत्पन्न होने वाली बीमारियों से बचा जा सकता है। साथ ही करीब 50 घन मीटर गैस प्रतिदिन प्राप्त होगी। इसका उपयोग 30-40 घरों में ईंधन के रूप में कर सकते हैं अथवा चार कि. मी. सड़क पर पूरी रात ट्यूब लाईट जलाई जा सकती हैं।

वैसे तो यहां गैर परम्परागत ऊर्जा के विभिन्न स्रोतों पर प्रयोग जारी है, पर ग्रामीण परिवेश तथा आस-पास में उपलब्ध सामग्री के अमिट भण्डार को देखते हुए कह सकते हैं कि इस क्षेत्र में बायोगैस ऊर्जा के विकास की असीम सम्भावनाएं हैं। सार्वजनिक तथा व्यक्तिगत बायोगैस संयंत्रों का निर्माण कर उर्वरक के आयात में लगे करोड़ों रुपये के खर्च से बचा जा सकता है। ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या से एक हद तक छुटकारा पा सकते हैं तथा ग्रामीण औद्योगिकीकरण को प्रोत्साहित कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ कर सकते हैं। साथ ही साथ गांवों को आत्मनिर्भर बनाने में मदद कर राष्ट्र को विकास की ओर उन्मुख कर सकते हैं।

निश्चित रूप से ऊर्जा प्राप्ति का यह वैकल्पिक स्रोत ग्रामीणों के जीवनस्तर सुधारने और सामाजिक-शैक्षिक परिवर्तन करने में समर्थ साबित होगा। अतः यह कहना कोई अतिश्योक्ति न होगी कि ऊर्जा का यह भण्डार और तकनीक ग्रामोत्थान के लिये रामबाण का कार्य करेगी और इससे विकसित गांव आदर्श गांव होगा।

जनजातीय क्षेत्रों में विकास योजनाओं का मूल्यांकन

डा० बी० एल० डेहरिया

अर्थशास्त्र विभाग,
शासकीय महाविद्यालय हर्रई
जिला छिंडवाड़ा (म. प्र.)

वर्तमान सामाजिक परिवेश में समाज के कुछ संगठित वर्ग एक बड़ी ताकत के रूप में उभर चुके हैं, लेकिन कुछ ऐसे हैं जो सदियों से सामाजिक, आर्थिक एवं क्षेत्रीय असंतुलन के हाशियों पर रह रहे हैं, विकासात्मक गतिविधियों की मुख्य धारा से अलग थलग जीवन यापन करते हुए ये समुदाय दुर्गम, बीहड़, क्षेत्रों में मानवीय मूल्यों से ओत-प्रोत परंतु सभ्यता के प्रारंभिक सोपानों में अवस्थित हैं। इन समुदायों को आदिवासी आदिमजाति, वनवासी, गिरिजन, इत्यादि नामों से जाना गया है।

देश में 425 जनजातियों के 5 करोड़ 16 लाख लोग 18 राज्यों और दो केन्द्र शासित प्रदेशों के अंचलों में निवास कर रहे हैं। देश का हृदय स्थल मध्यप्रदेश भौगोलिक एवं जनजाति विषमताओं से परिपूर्ण प्रथम राज्य है, जहां कुल जनसंख्या का 23.27 प्रतिशत जनजाति जनता है जो 4 पूर्ण जिलों 177 पूर्णतः आदिवासी विकास खंडों के साथ-साथ 29042 ग्रामों में निवास करती है।

विकास परियोजनाओं का निष्पादन

जनजातीय क्षेत्रों और उनके सर्वांगीण विकास के लिये शासकीय, अशासकीय प्रयत्नों के द्वारा कार्यक्रम निष्पादित करने का क्रम जारी रहा है। इसमें अशासकीय संस्थाओं का योगदान शासकीय प्रयासों का पूरक रहा है। इन संस्थाओं में वनवासी सेवा मंडल (मंडला), सेहारिया संघ (ग्वालियर), कस्तूरबा आश्रम संघ (नेवली) तथा रामकृष्ण मिशन, स्वामी विवेकानंद आश्रम (रायपुर) प्रमुख हैं। संविधान के अनुच्छेद, 164(1) तथा डा. वेरियर एल्विन और ठक्कर बप्पा के संयुक्त प्रयासों से 1954 में 54 बहुद्देशीय आदिजाति विकासखंडों की स्थापना की गई, जिसमें 10 विकासखंड मध्यप्रदेश में थे। इन विकासखंडों के कार्यों का मूल्यांकन 1959 में किया गया जिसकी परिणित 1960 में श्री यू. एम. ढेबर की अध्यक्षता में जनजातीय आयोग के गठन के रूप में हुई। जनजातीय आयोग के निर्देशन में जिन जनजातीय क्षेत्रों की 25,000 जनसंख्या तथा 150 कि. मी. से 200 कि. मी. तक सीमा निर्धारित की गई इन क्षेत्रों को आदिवासी विकास क्षेत्र घोषित किया गया।

सन् 1976 में संविधान संशोधन के अनुसार जनजातीय क्षेत्रों में क्षेत्रीय बंधन समाप्त किया गया और इन क्षेत्रों के निचले स्तर के विकास पर ध्यान केंद्रित किया गया जिसके तहत देश में 129 विकास परियोजनाओं में से मध्य प्रदेश में 40 परियोजनाओं को शुरू किया गया।

1993 में 73वें संविधान संशोधन के तहत प्रदेश में त्रिस्तरीय पंचायती राज व्यवस्था लागू की गई जिसमें 9050 आदिवासी पंचायतें, 147 जनपद पंचायतें तथा 13 जिला पंचायतों का गठन कर जनजातीय क्षेत्रों के विकास हेतु नए आयाम का प्रादुर्भाव हुआ।

जनजातीय क्षेत्रों में विकास योजनाओं का प्रभाव

जनजातीय क्षेत्रों में असंतुलन को समाप्त करने के लिये आदिवासी उपयोजना में प्रदेश के कुल क्षेत्रफल का 40 प्रतिशत भाग सम्मिलित किया गया। इसके अंतर्गत प्रदेश की कुल जनजातीय जनसंख्या में से 76.44 प्रतिशत जनसंख्या लाभान्वित हुई।

इन क्षेत्रों में कृषि, शिक्षा, वन, स्वास्थ्य, खनिज, विद्युतीकरण, महिला बाल विकास, रोजगार, परिवहन, संचार, उद्योग, संस्कृति

संरक्षण एवं सामाजिकी वानिकी के विकास हेतु विभिन्न विभागों को उनके अधिकार क्षेत्रांर्तगत क्रियान्वयन का दायित्व सौंपा गया। इनमें समन्वित ग्रामीण विकास, जवाहर रोजगार योजना, प्रधानमंत्री रोजगार योजना, डवाकरा जैसी महत्वपूर्ण योजनाओं के माध्यम से अनेक कार्य निष्पादित किये गये।

इनके अंतर्गत कई आकर्षक योजनायें सुविधायें जिनमें छात्रवृत्ति, छात्रावास, आश्रम, निशुल्क पाठ्यक्रम पुस्तकें और एक बत्ती कनेक्शन, सड़क निर्माण, परिवार कल्याण कार्यक्रमों को क्रियान्वित किया गया।

त्रि-स्तरीय पंचायत व्यवस्था के अंतर्गत उपरोक्त विभागों के कार्यों के निष्पादन हेतु पंचायतों, जनपद पंचायतों एवं जिला पंचायतों को सीधे विकास योजनायों को पूरा करने हेतु जनजातीय भागीदारी को महत्व दिया गया है।

निष्कर्ष

प्रदेश में विकास परियोजनाओं एवं पंचायती राज व्यवस्था के विकेन्द्रीकरण के पश्चात भी 23.66 प्रतिशत जनजाति लोग विकास गंगा के संपर्क में आने शेष हैं। उच्च शिक्षा नौकरियों में आकर्षण, आरक्षण उनके लिए औचित्य विहीन है।

जनजातीय क्षेत्र के विकास के लिए सुझाव

(1) निष्पादित परियोजनायों में माडा तथा लघु अंचल क्षेत्रों का विस्तार किया जाए, जिससे शेष क्षेत्रों की जनजातीय समुदायों को लाभांवित किया जा सकता है, क्योंकि 95.2 प्रतिशत जनजाति जनसंख्या ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करती है।

(2) संविधान की छठी अनुसूची को प्राथमिकता के आधार पर क्रियान्वित किया जाए जिससे जनजातीय क्षेत्र में उन्हें पर्याप्त संरक्षण मिल सकें।

(3) अत्याचार निवारण अधिनियम 1989 की धारा 14 का अक्षरशः इन क्षेत्रों में पालन करवाया जाए तथा संदिग्ध अधिकारियों की कार्यप्रणाली का मूल्यांकन किया जाए। जनजातीय क्षेत्रों में कुटीर और लघु उद्योगों की स्थापना की जाए उनके द्वारा उत्पादित वनोत्पाद का सीधा विक्रय जनजातीय केंद्रो से किया जाए, जिसमें बिचौलियों के शोषणों से उन्हें मुक्ति मिल सके।

(4) जनजातीय क्षेत्रों में महिला शिक्षा पर विशेष बल दिया जाए तथा रोजगार में उन्हें प्राथमिकता दी जाए।

यदि उपरोक्त सुझावों पर ध्यान दिया जाए तो जनजातीय लोगों की दशा सुधारने में अपेक्षित सफलता प्राप्त की जा सकती है।

(पृष्ठ 38 का शेष)

बेल : आहार भी...

है। रक्त-विकार में 50 मिलीग्राम बेल का गूदा शर्करा के साथ दिन में नित्य दो बार लेने से लाभ होता है।

बेल के पत्ते भी पोषक तत्वों एवं औषधीय गुणों से भरपूर हैं। पेट में कीड़े होने पर पत्तों का रस पिलाने से कीड़े नष्ट हो जाते हैं। यदि शरीर से दुर्गन्ध आती हो तो कुछ समय तक प्रतिदिन तीन-चार बेलपत्रों का सेवन लाभदायक पाया गया है। हैजे तथा भांग के सेवन से होने वाले नशे में बेलपत्र का रस लाभ पहुंचाता है। बेल के बीज से प्राप्त तेल में रेचक गुण पाये जाते हैं। बेल की जड़ का काढ़ा हृदय रोग में शीघ्र ही लाभ पहुंचाता है।

कीटनाशक दवाओं का उपयोग—सावधानियां

डा. ए. के. अवस्थी

फसलोत्पादन की उन्नत तकनीक के अंतर्गत पौध संरक्षण का विशेष महत्व है। हमारे देश में हरित क्रांति के बाद से फसलों के अधिक उत्पादन के लिए संकर जातियों के विकास के साथ-साथ ही कीटों की उत्पत्ति में वृद्धि हुई है। इन जातियों के साथ उर्वरक एवं कीटनाशकों का अनुचित प्रयोग कीट प्रकोप बढ़ाने में सहायक सिद्ध हुआ है। विश्व भर में कीटों की लगभग 85,0000 जातियां पाई जाती हैं जो विभिन्न फसलों को नुकसान पहुंचाती हैं। इनमें से 10,000 कीटों की जातियां विभिन्न फसलों को आर्थिक नुकसान पहुंचाती हैं। इन हानिकारक कीटों को नियंत्रित करने के लिए कीटनाशक दवाओं का उपयोग किया जाता है। इनके प्रयोग में असावधानी मानव के लिये प्राणघातक सिद्ध हो सकती है। इसलिये इनको खरीदते समय तथा छिड़काव हेतु इनका घोल बनाते समय और इनका छिड़काव या भुरकाव करते समय कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है जिससे इनके उपयोग से फसल अथवा मनुष्य को किसी प्रकार की हानि न हो।

सर्वप्रथम यह जान लेना आवश्यक है कि कीटनाशकों का उपयोग कब, कैसे और कितना किया जाये आजकल फसलों को कीड़ों के नुकसान से बचाने के लिये 'समन्वित कीट प्रबंध' पद्धति प्रचलित है। इसमें कीड़ों के प्रबंध हेतु ऐसी सभी विधियों को शामिल किया जाता है जिसमें कृषिगत उपाय, जैविक उपाय, यांत्रिक उपाय सम्मिलित होते हैं जिससे रसायनों के उपयोग से कीड़ों द्वारा की जाने वाली आर्थिक हानि को समाप्त किया जाता है। इस प्रकार इन सभी उपायों को एक साथ अपनाकर फसल को बचाना सर्वथा मान्य और सही है।

कीटनाशकों का चयन

कीटनाशकों का उपयोग कीड़ों को नियंत्रित करने हेतु अंतिम अस्त्र के रूप में किया जाना चाहिए। कीटनाशकों में मुख्य रूप से स्पर्श विष, आंतरिक विष, दैहिक विष और धूम्रक विष आदि प्रमुख हैं कीड़ों द्वारा पौधों को पहुंचने वाली क्षति और उनके मुखांगों के आधार पर कीटनाशक दवा का चयन करना चाहिए। स्पर्श विष के संपर्क में आने पर कीड़े समाप्त हो जाते हैं। कीटनाशकों का प्रयोग ऐसे कीड़ों को मारने के लिए किया जाता है जो पौधे के विभिन्न भागों को काट कुतरकर खाते हैं। दैहिक विष का उपयोग मुख्यतः रस चूसने वाले कीड़ों को मारने में किया जाता है। इसी प्रकार धूम्रक दवाओं का उपयोग प्रायः भंडारण में कीड़ों को मारने में किया जाता है।

बाजार से कीटनाशक खरीदते समय निम्न बातों का ध्यान रखें :

1. कीटनाशकों को उनकी वास्तविक पैकिंग अर्थात पैकेट बंद स्थिति में ही खरीदें।
2. इन्हें सदैव आवश्यकतानुसार ही खरीदें और इन्हें खरीदते समय इनके डिब्बे पर इनके उपयोग करने की अंतिम तारीख अवश्य देख लें। इनके उपयोग करने की अंतिम तारीख निकलने पर ये कीड़ों को मारने में कारगर सिद्ध नहीं होते बल्कि वातावरण प्रदूषित करते हैं।

कीटनाशक दवा का घोल बनाते समय निम्नलिखित सावधानियां बरतनी चाहिए :

1. कीटनाशक का घोल हमेशा खुली जगह में बनायें।
2. घोल अलग बर्तन (बाल्टी इत्यादि) में लकड़ी से हिलाकर बनायें।
3. घोल बनाते समय तंबाकू, सुपारी, पान न खाए तथा धूम्रपान न करें।
4. यदि घोल बनाते समय यह शरीर पर पड़ जाये तो साबुन से उस जगह को धो लेना चाहिए।

कीटनाशक का छिड़काव/भुरकाव करते समय सावधानियां:

1. दवा के छिड़काव हेतु स्प्रेयर या छिड़काव यंत्र और भुरकाव हेतु डस्टर या भुरकाव यंत्र का ही उपयोग करें।
2. दवा छिड़काव हेतु प्रत्येक फसल के लिये फसल स्थितिनुसार सिफारिश की गई पानी की मात्रा में ही घोल बनाकर छिड़काव करें।

3. दवा का छिड़काव या भुरकाव खाली पेट कभी न करें।
4. यह कार्य करते समय शरीर पर पूरे कपड़े पहनें और मुंह तथा नाक पर कपड़ा अवश्य बांधें। साथ ही दवा के पैकेट और बोतल पर लिखे सावधानी निर्देशों का पालन करें।
5. शरीर पर खुला घाव होने पर कीटनाशक का छिड़काव/भुरकाव करते समय घाव को ढक कर रखें।
6. यह कार्य करते समय हवा की दिशा का ध्यान रखें। हवा की दिशा के साथ-साथ चलकर यह कार्य करें। जिससे दवा शरीर अथवा मुंह पर न गिरे।
7. तेज हवा चलने पर छिड़काव अथवा भुरकाव न करें।
8. छिड़काव या भुरकाव सुबह या शाम के समय करें।
9. यह कार्य करते समय सुपारी, तंबाखू अथवा धूम्रपान सेवन न करें।
10. कभी भी कीटनाशकों को मिलाकर फसल पर न छिड़कें।
11. दवा का छिड़काव या भुरकाव करते समय यंत्र खराब होने पर उसे ठीक करने के बाद हाथों को साबुन से अच्छी तरह धोयें।
12. कीटनाशकों का उपयोग फसल पर कीड़े मारने हेतु उनके द्वारा की गई आर्थिक क्षति एवं उनके परजीवी तथा परभक्षी जीवों की संख्या को ध्यान में रखकर कृषि अधिकारी से उचित सलाह लेकर ही करें।

दवा छिड़काव/भुरकाव के बाद की सावधानियां

1. कीटनाशकों को फसल में प्रयोग करने के बाद कम से कम 10 दिन तक फसल के किसी भी भाग का उपयोग खाने में न करें। सब्जियों की फसल पर दवा उपयोग के पहले फलों की तुड़ाई अवश्य करें।
2. यदि छिड़काव के बाद दवा का घोल बच जाए तो इसका उपयोग दूसरे खेत में करे अथवा गड्ढा खोद कर मिट्टी में दवा दे।
3. दवा छिड़काव/भुरकाव करने के बाद साबुन से अच्छी तरह नहायें और कपड़े साफ करें।
4. इस कार्य को करते समय या बाद में छिड़काव/भुरकाव करने वाले व्यक्ति को यदि चक्कर या उल्टी महसूस हो तो तुरंत डाक्टर को दिखाए।

कीटनाशक दवा का भंडारण :

1. यथासंभव कीटनाशक दवा का भंडारण न करें। इनका भण्डारण करते समय इन्हें पशुओं और मनुष्यों के भोज्य पदार्थों से दूर ताले में बंद रखे।
2. इन्हें अपने सोने के या पशुओं के कमरे में कभी न रखें क्योंकि इनसे जहरीली गंध निकलती है जो स्वास्थ्य के लिये हानिकारक होती है।

अन्य सावधानियां :

1. दवाओं के खाली डिब्बे, बोतल आदि नष्ट कर दें। इनका उपयोग घर में कभी न करें।
2. बी.एच.सी. एवं डी.डी.टी. पाउडर का भुरकाव कद्दूवर्गीय फसलों पर कभी न करें।
3. खाद्य पदार्थों में कीटनाशक दवा का प्रयोग न करें।
4. दवा मिला हुआ बीज, अनाज या फल-फूल खाने के काम में या जानवर को खिलाने के काम में न लायें।
5. उन तालाबों में इन कीटनाशकों का उपयोग कदापि न करें जिनमें मछली पालन होता है, कपड़े धोये जाते हैं या जिनका पानी जानवर या मनुष्यों के पीने के उपयोग में आता है। साथ ही इन तालाबों में पौध-संरक्षण यंत्रों को भी साफ न करें।
6. सिर की जुंए अथवा पशुओं के शरीर के कीड़े मारने के लिए या साधारण रूप से फसल के कीड़ों को मारने वाले कीटनाशक का उपयोग न करें। इन्हें मारने के लिए विशेष कीटनाशक आते हैं उन्हीं का प्रयोग करें।

इस प्रकार कीटनाशक दवाओं के उपयोग में बनाई गई सावधनियां बरतने पर मनुष्य को किसी प्रकार की हानि नहीं होगी एवं कीड़ों पर नियंत्रण के साथ साथ पर्यावरण प्रदूषित होने से बचा रहेगा।

क्षेत्रीय कृषि अनुसंधान केन्द्र,
बाईर दादर फार्म,
रायगढ़ (मध्य प्रदेश)

आड़े समय के लिए बचत

ग्रामीण क्षेत्रों में जहां पर आमदनी बहुत कम होती है, एक भरे-पूरे परिवार को चलाना एक मुश्किल काम होता है। फिर भी नाममात्र की आमदनी में भी आड़े समय के लिए कुछ बचा लेना ग्रामीण महिलाओं की एक खूबी है।

इस बात की पुष्टि में कांचीपुरम के पास एक छोटे-से गांव सिरूकावेरी पक्कम की ऐसी कुछ सुघड़ गृहिणियों का उदाहरण दिया जा सकता है। इस गांव की परिश्रमी और बुद्धिमान महिलाओं में पैसे की बचत करना एक आदत-सी बन गई है। अभी कुछ समय पहले तक इन महिलाओं को कभी स्वप्न में भी ख्याल नहीं आया था कि वे अपना बचत खाता खोल सकती हैं और उनमें धन जमा कर सकती हैं। उनका ख्याल था कि चार-पांच रुपये की छोटी-सी बचत से बचत खाता कैसे खोला जा सकता है।

इसी दौरान स्थानीय आंगनबाड़ी कार्यकर्ता बुरबुर रानी ने इस गांव की महिलाओं को 'महिला समृद्धि योजना' के बारे में बताया। सभी महिलाओं को यह योजना पसन्द आई। उन्हें लगा कि इससे एक तो उनकी बचत राशि सुरक्षित रहेगी और दूसरा नई योजना के अंतर्गत वह लगातार बढ़ती रहेगी। गांव की कई महिलाओं ने 'महिला समृद्धि योजना' के अंतर्गत अपना-अपना खाता खोल लिया।

15 अगस्त 1993 को स्वतंत्रता दिवस के अवसर पर प्रधानमंत्री ने इस योजना की घोषणा की थी तथा इसे 2 अक्तूबर, 1993 को आरंभ किया गया था। यह योजना महिलाओं को लिंग-भेद के आधार पर सामाजिक अवरोधों के खिलाफ अपनी आवाज उठाने में सशक्त बनाती है और उन्हें छोटी-छोटी बचत करने के लिए प्रोत्साहित करती है। उदाहरण के तौर पर रुक्मिणि का पति सड़क के किनारे साइकिल ठीक करने की दुकान चलाता है। वह उसे रोजाना 5-6 रुपये देता है। वह इस छोटी-सी राशि में से भी रोजाना 50 पैसे या एक रुपया बचाकर हफ्ते में 4-5 रुपये की बचत कर लेती है। अब, उसने अपनी यह बचत महिला समृद्धि योजना के बचत खाते में जमा कराना शुरू कर दिया है।

ऐसी ही एक मिसाल 18 वर्षीय पुष्पा की है। वह इस योजना के अंतर्गत अब तक 52 रुपये बचा चुकी है। यह राशि भी उसने अपने पिता द्वारा छोटे-मोटे खर्चों के लिए दिए गए पैसों में जब-तब करके बचाई है।

महिला समृद्धि योजना ने ग्रामीण महिलाओं में बचत की आदत को एक नया आयाम दिया है और यह योजना अधिक से अधिक लोकप्रिय होती जा रही है। एक आंगनबाड़ी कार्यकर्ता का कहना है "ग्रामीण महिलाओं के लिए महिला समृद्धि योजना के अंतर्गत पास-बुक का रखना सम्मान का प्रतीक बन गया है। डाकघर में महिलाओं को आते-जाते देखना अब एक आम-सी बात हो गई है।"

कांचीपुरम के पास ही एक अन्य गांव गोविन्दवाड़ी में इस योजना का और भी रोचक दृश्य प्रस्तुत होता है। वहां पर डाकघर की इंचार्ज गंगादेवी ने बड़े चमत्कारिक ढंग से महिलाओं को प्रोत्साहित करके इस योजना के अंतर्गत 45 बचत खाते खुलवा दिए हैं। इनमें से 25 खातेदार महिलाओं ने इस योजना के अंतर्गत अपेक्षित 300 रुपये की पूरी राशि जमा कर दी है।

महिला समृद्धि योजना के अंतर्गत कोई भी वयस्क महिला अपने क्षेत्र के डाकघर में चार रुपये की कम से कम राशि के साथ बचत खाता खोल सकती है। ऐसे खाते में किसी भी समय अधिकतम राशि 300 रुपये होनी चाहिए और यह राशि एक साल रखी जानी चाहिए। इस योजना की एक विशेषता यह भी है कि केन्द्रीय सरकार इसमें एक वर्ष में राशि का 25 प्रतिशत अर्थात अधिकतम 75 रुपये तक का अंशदान देती है।

तमिलनाडु में पिछले एक वर्ष में ग्रामीण महिलाओं में यह योजना काफी लोकप्रिय हुई है। जनवरी के अंत तक इस योजना के अंतर्गत 15,62,653 खाते खोले जा चुके हैं और उनमें जमा राशि 7 करोड़ 67 लाख रुपये से अधिक है। इस योजना के अंतर्गत सर्वश्रेष्ठ राज्य के रूप में तमिलनाडु को महिला समृद्धि योजना का प्रथम पुरस्कार, जो 3 लाख 50 हजार रुपये है, मिल चुका है। राज्य के सर्वश्रेष्ठ जिले के रूप में नीलगिरि को एक लाख रुपये का पुरस्कार मिला है।

साभारः पत्र सूचना कार्यालय

आर. एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : (डी (डी एल) 12057/95
पूर्व भुगतान के बिना डी. पी. एस. ओ. दिल्ली में डाक में डालने
की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55

R.N. 708/57
P & T Regd. No. D(DL) 12057/95
Licensed under U (DN) 55
to post without pre-payment at DPSO Delhi-54

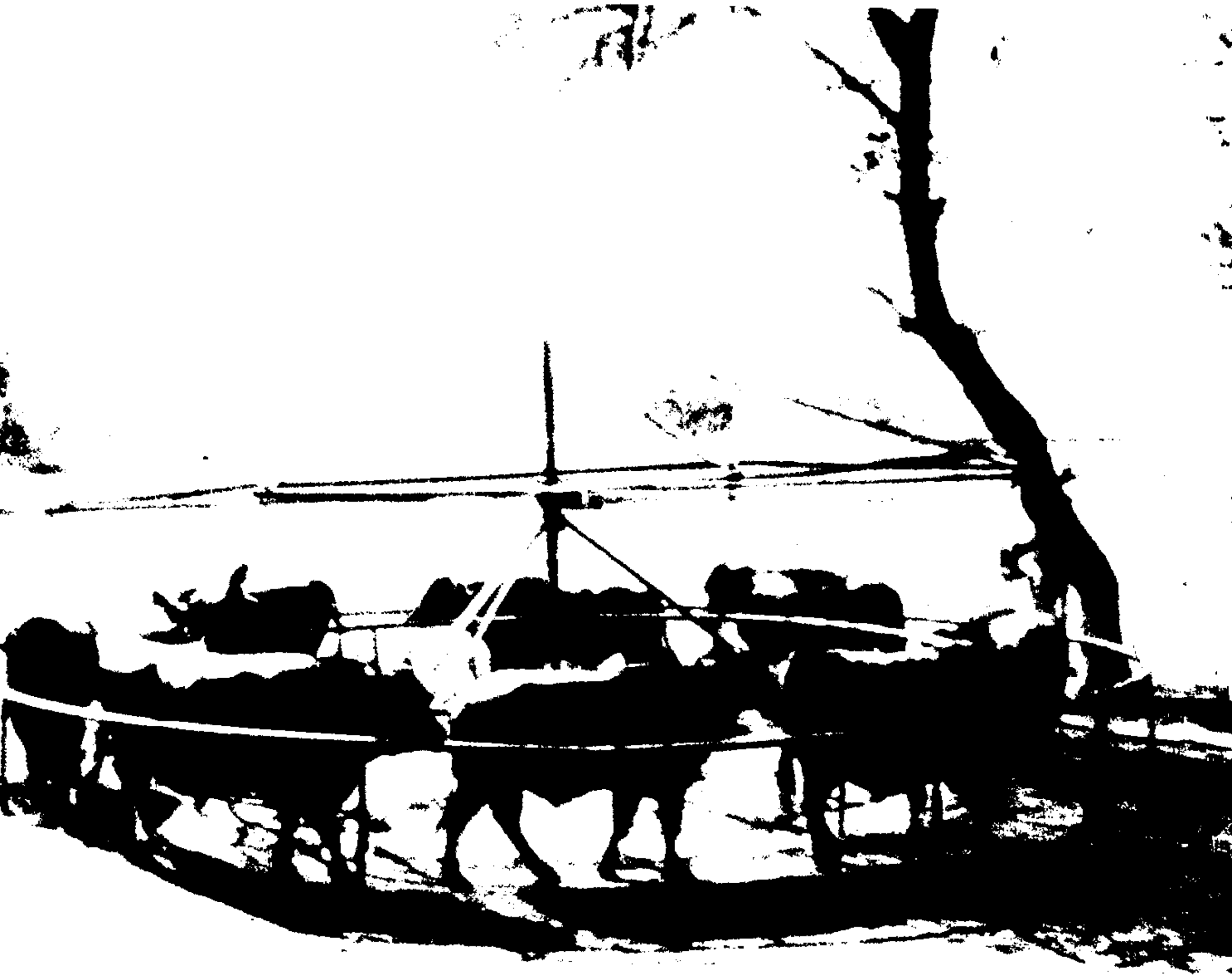

निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली - 110001 द्वारा प्रकाशित और आकाशदीप प्रिन्टर्स, नई दिल्ली 110002 द्वारा मुद्रित